राष्ट्रधर्म

माघ-फाल्गुन-२०६८ फरवरी-२०१२
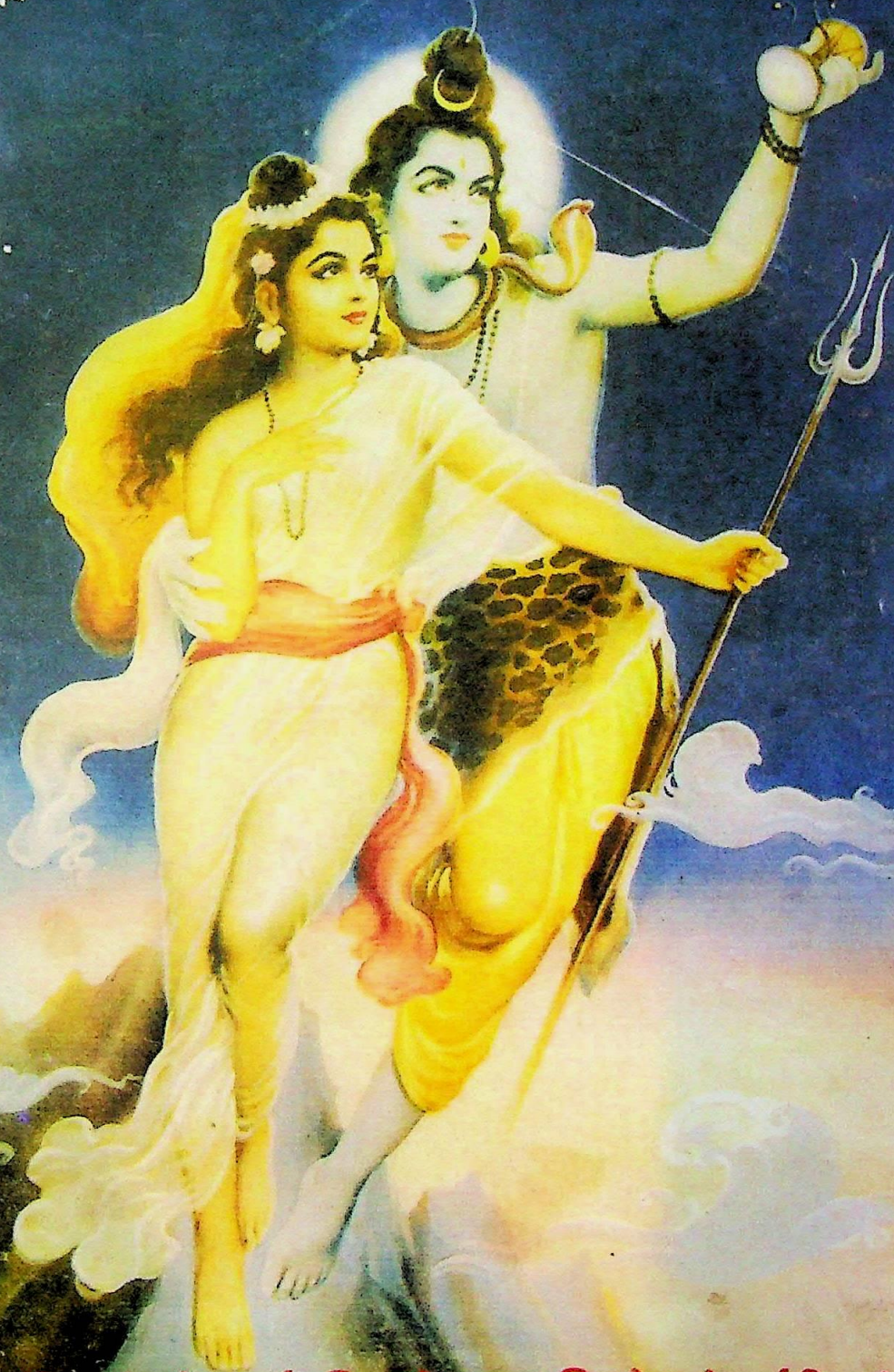
वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये। जगतःपितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।
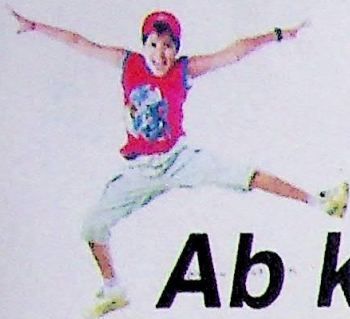
संस्थापक :

• पं. दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्रधर्म

राष्ट्रधर्म तो कल्पवृक्ष है, संघ-शक्ति ध्रुवतारा है।
बने जगद्गुरु भारत फिर से, यह सङ्कल्प हमारा है।।

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर
लखनऊ–२२६००४
editor_rdm_1947@rediffmail.com
mgr.rdm_1947@gmail.com

दूरभाष : (०५२२) ४०४१४६४ (सम्पादकीय)
दूरभाष : (०५२२) २६६१३८४ (व्यवस्था)
फैक्स : (०५२२) २६६०१०५

❖

वर्ष - ४८, अङ्क - ६
माघ/फाल्गुन– २०६८
(युगाब्द–५११३)
फरवरी – २०१२

❖

मूल्य : ₹ १५.००
वार्षिक : ₹ १६०.००
आजीवन (२० वर्ष) : ₹ २०००.००
विशेष आजीवन (२० वर्ष) : ₹ २५००.००
विदेश के लिए वार्षिक: ४० डॉलर

❖

परामर्शदाता :
• वीरेश्वर द्विवेदी

सम्पादक :
• आनन्द मिश्र 'अभय'

सहायक सम्पादक :
• रामनारायण त्रिपाठी

❖

प्रभारी निदेशक :
• आनन्दमोहन चौधरी

प्रबन्धक :
• पवनपुत्र बादल

प्रस्तुति

लेख

कहानी / व्यंग्य / संस्मरण

कविता

विविध स्तम्भ

चित्राङ्कन– परमात्मा प्रसाद

मुखपृष्ठ–
जगत् के माता-पिता शंकर-पार्वती लोक हितार्थ आकाश-मार्ग से निरीक्षण करते हुए। चित्र– रघुवीर मुलगाँवकर

विशेष :– *'राष्ट्रधर्म' में प्रकाशित सामग्री का उपयोग 'राष्ट्रधर्म प्रकाशन लि०' किसी भी रूप में कर सकता है।*

इन्हें भार लगने लगी। देश खण्डित कर डाला और जो बचा-खुचा, कटा-पिटा भारत अंग्रेज इनके हवाले कर गये, उसे भी यथावत् न रख पाये।

आचार्य विनोबा भावे ने तो 'भूदान-यज्ञ' बाद में किया; गान्धी-नेहरू कांग्रेस ने तो इसका प्रारम्भ पहले से ही कर दिया था। सिन्ध का हिन्दू-बहुल जिला थारपारकर, लाहौर का हिन्दू-बहुल नगर, बंगाल का चटागाँव हिल–ट्रैक्ट तो रैड क्लिफ के कलम से गँवाये ही, सरदार पटेल न होते, तो लक्षद्वीप पर भी पाकिस्तानी जलसेना का कब्जा हो गया होता और माउण्टबैटन के दबाव में अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह भी नेहरू जी जिन्ना के हवाले कर दिये होते। बर्मा और मणिपुर के बीच की एक घाटी नेहरू जी ने कब बर्मा के प्रधानमन्त्री ऊ नू को दान कर दी, पता ही नहीं चला। बेरूवाड़ी-दान की बात को सभी जानते हैं। भू-दान ही नहीं, पाकिस्तान को जल-दान करने से भी वे नहीं चूके।

विभाजन, भू-दान और जल-दान की इस कांग्रेसी बीमारी के विषाणु आज सभी राजनीतिक दलों में प्रविष्ट होकर वहाँ अपना प्रभाव जमा चुके हैं। फलतः प्रदेशों, मण्डलों (कमिश्नरियों), जिलों, तहसीलों, विकासखण्डों और न्याय-पञ्चायतों तक को बाँटने के उपक्रम और वादे निरन्तर जारी हैं। कब कौन 'नेता' और कौन पार्टी क्या बाँट डाले, पता नहीं। कोई सीमा नहीं, अवधि नहीं इस प्राणलेवा संक्रामक बीमारी की। यह विभाजक मनोवृत्ति भीषण मनोरोग के रूप में देशघाती, राष्ट्रघाती ही नहीं, आत्मघाती हो गयी है।

आइये, अब जरा सिक्के का दूसरा पहलू देखें। वर्ष १९८१। नारायण दत्त तिवारी पुनः उ.प्र. के मुख्यमन्त्री क्या बने, पहला सत्कर्म उन्होंने कानपुर जनपद को कानपुर महानगर और कानपुर देहात में बाँटकर किया। लगभग २५ वर्षों बाद कहीं जाकर उसका पृथक् मुख्यालय बन पाया। उस समय प्रदेश के एक वरिष्ठ आई.ए.एस. ने बताया था कि एक जिला का मूल ढाँचा खड़ा करने में न्यूनतम १४३ करोड़ रुपये का व्यय आता है। तब से अब तक अकेले उ.प्र. में ही कितने नये जिले, तहसीलें, विकासखण्ड (नयी कमिश्नरियाँ भी) बना डाले गये हैं कि शायद ही कोई उनकी ठीक संख्या बता सके। १९८१ से अब तक महँगाई, वेतन, भत्ते आदि कहाँ जा पहुँचे हैं ! इससे एक जिला बनाने पर कितना बड़ा वित्तीय भार राजकोष पर पड़ता है, इसका आकलन कोई नहीं करता। जिला मुख्यालय पर जिला अधिकारी ही नहीं, पुलिस अधीक्षक, मुख्य चिकित्साधिकारी, जिला जज, जिला विद्यालय निरीक्षक, बेसिक शिक्षा अधिकारी, कारागार, कोषागार, पुलिस लाइन, डाक बँगला, आदि अनेक अन्य कार्यालय भी स्थापित किये जाना अनिवार्य है। आवास आदि का निर्माण वाहन आदि अलग से। ऊपर से मजे की बात यह कि जिले का नाम कुछ, मुख्यालय का और, जिसे पूछते ढूँढते फिरिए। अंग्रेजों ने भी गोरखपुर से देवरिया और झाँसी से ललितपुर तहसील को जिला बनाया था; पर बाद में उन्हें अपना निर्णय बदलना पड़ा था।

अब नये प्रदेश का निर्माण लें। वहाँ राज्यपाल, उच्च न्यायालय, सचिवालय अन्यान्य विभागों के मुख्यालय, मुख्यमन्त्री, मन्त्रियों, विधायकों, अधिकारियों आदि के आवास, वाहन, भत्ते आदि का हिसाब लगायें। राजभवन और राज्यपाल का सचिवालय, न्यायमूर्त्तियों के आवास, अतिथि भवन आदि को भी जोड़ लें। भूतपूर्व होनेवाले मुख्यमन्त्रियों, विधायकों आदि पर होनेवाले व्यय-भार का गणित लगा लें। विनाश निधि बन चुकी विकास-निधि को भी गिन डालें। लाखों करोड़ का योग न आये, तो कहें। फिर किसी एक प्रदेश यथा उत्तराखण्ड को लें। चार भू.पू. मुख्यमन्त्री हैं। २२ से बढ़कर ७० विधायक हो गये। जिलों, तहसीलों की बात ही क्या करें ? झारखण्ड के मधु कोड़ा, शिबू सोरेन जैसों के कारनामें गिनें। अकेले कोड़ा ही प्रदेश के पूरे बजट से भी अधिक धनराशि अल्पकाल में ही डकार गये। हरियाणा जब बना, तो मात्र ६ जिले थे; पर मन्त्री डेढ़ दर्जन से अधिक। आज वहाँ २२ जिले हैं। भ्रष्टाचार की तो बात ही क्या, भजनलाल अपनी पूरी 'भजन मण्डली' (मन्त्रिमण्डल) के साथ रातोरात जनता पार्टी से कांग्रेसी हो गये। 'आया राम गया राम' की एक नयी कहावत भी हरियाणा की ही देन है।

कहने का अभिप्राय यह कि देश भर में नवनिर्मित प्रदेशों, जिलों आदि को गिनने बैठें, तो जूड़ी-ताप चढ़ आयेगा। जहाँ गोवा को महाराष्ट्र में; दमण, दीव, दादरा नगर हवेली को गुजरात, पाण्डिचेरी को तमिलनाडु में और चण्डीगढ़ को पंजाब में विलय कर देना अपेक्षित था, वहाँ आये दिन नये प्रदेशों, जिलों आदि की बाढ़ लाने का जनद्रोही विचार परवान चढ़ाया जा रहा है। इन पर जो अरबों-खरबों की धनराशि व्यय होगी अनावर्त्ती और आवर्त्ती बजट के रूप में, वह आखिर वसूली तो जनता से ही जायेगी। इस पर किसी राजनीतिशास्त्री, स्वतन्त्रचेता बुद्धिजीवी, अर्थशास्त्री का ध्यान क्यों नहीं जाता ? क्या उनकी विचार शक्ति को लकवा मार गया है या किसी ने मुँह पर कर्फ्यू लगा रखा है ?

स्मरण रहे, हम अपनी हर क्षेत्र में विशालता के कारण महान् रहे हैं। अपनी विशालता पर हम गर्व करना कब सीखेंगे ? छोटा सोच कभी किसी को बड़ा नहीं बना सकता। बड़ा सोचेंगे, बड़ा करेंगे, तो बड़प्पन स्वयम् हमारे घर चलकर आयेगा और हम अनजाने ही बड़े बन जायेंगे; महान् बन जायेंगे; पुनः विश्व-मञ्च पर हमारा विशाल व्यक्तित्व अपना वर्चस्व स्थापित करने में सफल होगा और तब हमारी विशालता की विशाल शक्ति के समक्ष छोटे-छोटे देशों को छोड़ें, अमेरिका, चीन, रूस जैसे दानवाकार देश भी सिर झुकायेंगे। हम कोई लैटविया, लिथुआनिया, एस्टोनिया जैसे अल्पकाय देश नहीं कि रूस ने जैसे जब चाहा, उन्हें हड़प लिया, वैसे हमें कोई हड़प लेगा। □

— आनन्द मिश्र 'अभय'
E-mail : editor_rdm_1947@rediffmail.com

अजर, अमर हम अविनाशी

– विजय कुमार

यूनानी साहित्य में एक मृत्युञ्जयी पक्षी 'फीनिक्स' की चर्चा आती है। उसके बारे में मान्यता है कि अपनी राख में से वह फिर-फिर जीवित हो जाता है।

दुनिया के गत लाखों वर्ष के इतिहास पर दृष्टि डालें, तो ध्यान में आता है कि भारतवर्ष और हिन्दू समाज भी मृत्युञ्जयी है। फीनिक्स पक्षी तो काल्पनिक है; पर हिन्दू समाज इस धरा की जीवित-जाग्रत वास्तविकता है। हिन्दुओं पर हजारों आपदाएँ आयीं। इससे असीमित धन, जन, भूमि, सत्ता और मान-सम्मान की हानि भी हुई; पर वह फिर उठ खड़ा हुआ। 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी' कहकर हमारे विरोधी भी इसे स्वीकार करते रहे हैं।

उतार-चढ़ाव सृष्टि का सनातन नियम है। दुनिया में जय-पराजय हर देश और समाज को समय-समय पर झेलनी पड़ी हैं। हमारे साथ तो यह कुछ अधिक ही हुआ है; पर हमने एक दिन के लिए भी पराजय को मन से स्वीकार नहीं किया। इतना ही नहीं, तो हमने हजारों वर्ष तक चले संघर्ष में उन अमर बलिदानियों और हुतात्माओं को अपने देश व धर्म के लिए गौरव और प्रेरणा के रूप में स्वीकार किया।

दाहिरसेन

बलिदान की यह परम्परा तब से ही प्रारम्भ हो गयी, जब से शक, हूण, अरब, तुर्क, पठान, मुगल आदि विदेशी और विधर्मियों के हमले भारत पर होने लगे। इस्लामी हमलावरों के काल में राजा दाहिरसेन की पुत्रियाँ सूर्या और परिमल, गुरु अर्जुनदेव, गुरु तेगबहादुर और चारों गुरुपुत्र, बन्दा बैरागी, हकीकत राय जैसे हजारों बलिदानियों के प्रेरक प्रसंगों से इतिहास भरा है।

राजस्थानी जौहर की गाथाएँ सुनकर किसका मस्तक गर्व से ऊँचा नहीं हो जाता ? उन वीर माताओं ने जान देना स्वीकार किया; पर आन नहीं। अंग्रेजों और पुर्तगालियों ने भी इस बर्बरता को दोहराया। भारत का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है, जहाँ इन्होंने हत्या, अग्निकाण्ड और दुराचार का नंगा नाच न किया हो। गत शती की जलियाँवाला बाग (अमृतसर) और मानगढ़ (राजस्थान) जैसे अनेक सामूहिक नरसंहारों की गाथाएँ भी लोककथाओं और लोकगीतों में जीवित हैं।

लेकिन इतना सब होने के बाद भी इन बलिदान पर्वों पर हम हर साल काले कपड़े पहनकर छाती नहीं पीटते। उत्सवप्रिय हिन्दू समाज ने इन दुखद प्रसंगों को भी प्रेरणा और गौरव के पर्वों में बदल दिया है। प्रायः हम मेले लगाकर उस दिन को याद करते हैं। जगह-जगह भोजन और शर्बत के लंगर तथा सेवा के शिविर लगाकर उन बलिदानियों को अपनी श्रद्धाञ्जलि देते हैं।

हम 'पुरानी नींव नया निर्माण' की कहावत के अनुसार पिछली घटनाओं और दुर्घटनाओं से प्रेरणा लेकर आगे देखने में विश्वास रखते हैं। मुस्लिम और ईसाई हमलावरों ने भारत में हजारों मन्दिर तोड़े। हमने उनमें से कई को पहले से भी अधिक भव्य रूप में फिर बना लिया। अब हम विध्वंस के बदले उनके पुनर्निमाण के दिन को याद कर उत्सव मनाते हैं।

परन्तु इसके दूसरी ओर अरब जगत् को देखें, तो १४०० साल पूर्व हुए एक युद्ध को याद कर, पराजित गुट के अनुयायी आज तक रोते हैं। कुछ लोग उसे भले ही सत्य और असत्य के युद्ध जैसा कोई अच्छा नाम दें; पर वह विशुद्ध सत्ता का संघर्ष था। उसमें एक गुट को हारना ही था। एक गुट ने अपनी कबीलाई बर्बरता दिखाते हुए दूसरे गुट के बड़ों ही नहीं, तो बच्चों को भी तड़पा-तड़पा कर मारा।

पराजित लोग भले ही इसे अमानवीय कहें; पर उनके अपने क्रूर कर्मों से भी इतिहास के लाखों पृष्ठ भरे हैं। विना बात मरने और निहत्थे-निरपराध लोगों को मारने का उनका स्वभाव आज भी बना है। जेहादी और आत्मघाती हमलों से वे सब कुछ नष्ट करने पर तुले हैं। दुनिया में आतंक का मुख्य कारण यह मानसिकता ही है।

हिन्दुओं की जीवन्तता और उत्सवप्रियता पर एक और दृष्टि से विचार करें। ईश्वर एक होने पर भी हिन्दू कण-कण में उसे देखता है। उसकी दृष्टि में पशु, पक्षी, मानव, जलचर, पेड़, पौधे, धरती, जल, वायु, अग्नि, आकाश.. सबमें भगवान् है। हम हजारों पन्थ, मत, सम्प्रदाय और देवी-देवताओं को मानते हैं। ईश्वर अजन्मा, अजर और अमर है; पर उसके कई अवतारों ने अपनी लीलाओं से इस धरा को पवित्र किया है। हम इन सब रूपों की पूजा करते हैं।

अवधबिहारी श्रीराम और मथुरानन्दन श्रीकृष्ण के बालरूप की महिमा सुनने और गाने में किसे आनन्द नहीं आता ? जब तुलसीदास 'ठुमुकि चलत रामचन्द्र, बाजत पैंजनियाँ' गाते हैं, तो सबका मन श्रीराम को गोद में उठाकर दुलारने का हो उठता है। धनुष-यज्ञ से पूर्व राजा जनक और जानकी के मन का असमञ्जस हर व्यक्ति को अपना-सा लगता है। जब श्रीराम अपनी प्राणप्रिया के वियोग में रोते हुए वन-वन भटकते हैं, तो सबकी आँखों में आँसू आ जाते हैं।

इसी प्रकार जब सूरदास 'यशोदा हरि पालने झुलावे' गाते हैं, तो बच्चे से लेकर बूढ़े तक बालकृष्ण के पालने की डोरी में हाथ लगाकर उन्हें सुलाने का श्रेय लेने को उमग उठते हैं। जब यशोदा कृष्ण को ऊखल से बाँधती हैं, तो सबके मन में कृष्ण के प्रति करुणा उत्पन्न हो जाती है। कंस का वध करते समय और महाभारत में गीता सुनाते समय श्रीकृष्ण सबको गौरव से भर देते हैं।

हमारे भगवान् का क्या कहना ? वे हँसते हैं, तो रोते भी हैं। वे नाचते हैं, तो गाते भी हैं। घर में बच्चों की बालसुलभ शरारतों को देखकर हम भगवान् को तथा मन्दिर में बाल भगवान् की मूर्त्ति देखकर अपने बच्चों को याद कर लेते हैं। भगवान् के कण-कण और हर प्राणी में विद्यमान होने का यही तो अर्थ है। कीर्त्तन करते हुए तेरा-मेरा का भेद मिटाकर भक्त और भगवान् एकरूप हो जाते हैं।

दूसरी ओर ईसा मसीह या इस्लाम के पैगम्बर के सौम्य रूप की चर्चा प्रायः कहीं नहीं है। ईसा मसीह का सर्वाधिक प्रसिद्ध चित्र वही है, जिसमें वे रक्तरञ्जित अवस्था में सूली पर लटके हैं। इस्लाम के पैगम्बर का जीवन तो युद्धों में ही बीता। इसीलिए मुसलमान चाहे जिस देश में हों, किसी न किसी से लड़ ही रहे हैं। दूसरे नहीं मिलते, तो वे आपस में ही लड़ते हैं।

गुरु अर्जुन देव गुरु तेगबहादुर बन्दा बैरागी

गत २,००० साल का अनुभव बताता है कि किसी नगर, गाँव या कबीले पर कब्जे के लिए हुआ आपसी संघर्ष या मृत्युदण्ड पाये, सलीब पर लटके ईसा मसीह किसी को सत्य, अहिंसा और प्रेम की शिक्षा नहीं दे सकते। इसलिए इन दोनों मजहबों के अनुयायी अपने जन्मकाल से ही दुनिया के अधिकाधिक जन, धन और भूमि पर कब्जा करने के लिए लड़ रहे हैं। विश्व में अशान्ति का यही कारण है।

क्या यह कटु सत्य नहीं है कि किसी इस्लामी देश में लोकतन्त्र नहीं है। कुछ स्थानों पर वह दिखावे के लिए है; पर वहाँ कब सेना या तालिबानी हावी हो जायें, कहना कठिन है। अपनी वैचारिक असफलता को छिपाने के लिए वहाँ मरने और मारने का खुला खेल जारी है। कौन, कब, किसे मार दे; कुछ पता नहीं। पिछले दिनों कई इस्लामी देशों में तानाशाही सत्ता के विरुद्ध विद्रोह हुआ है; पर वह भी किसी सार्थक निष्कर्ष पर पहुँचता नजर नहीं आता।

अधिकांश ईसाई देशों में लोकतन्त्र है; पर इसकी आड़ में द्वितीय विश्व-युद्ध से पूर्व ब्रिटेन और अब अमरीका पूरी दुनिया को लूटने और बरबाद करने पर तुला है। वे अपने धन और शस्त्रों के बल पर भले ही दुनिया को दबा कर रखें; पर यह भी सत्य है कि वहाँ चर्च बिक रहे हैं। चर्च में जानेवालों की संख्या लगातार घट रही है। इस कमी को वे अपने धनबल से भारत जैसे देशों में मतान्तरण द्वारा पूरा करना चाहते हैं।

चर्च के बन्धन टूटने से वहाँ सब मर्यादाएँ मिट रही हैं। परिवार-व्यवस्था के बाद अब विवाह-व्यवस्था भी समाप्त होने को है। 'लिव इन रिलेशनशिप' के नाम पर खुला व्यभिचार चल रहा है। बुढ़ापे में देखरेख की जिम्मेदारी जब शासन की है, तो बच्चे क्यों पैदा करें ? इस सोच से ईसाई देशों की जनसंख्या घट रही है। इससे चिन्तित होकर अब वे अधिक बच्चे पैदा करनेवाले दम्पतियों को पुरस्कृत करने लगे हैं। केरल का चर्च भी इसी दिशा में चल रहा है।

मिशनरी और पादरी चाहे कुछ भी कहें; पर सलीब पर लटका, ईश्वर का तथाकथित पुत्र, युवा-वर्ग की मानसिक और आत्मिक भूख अब शान्त नहीं करता। इसके बदले हँसता-खेलता, रोता-लड़ता और शरारत करता बालकृष्ण उन्हें अच्छा लगता है। इसलिए पश्चिमी देशों में 'हरे कृष्ण आन्दोलन' बहुत लोकप्रिय हो रहा है। हर नगर में कीर्त्तन करते, धोती पहने गौरांग लोग, भाव विभोर होकर नाचते नजर आते हैं। रूस में गीता के विरोध का कारण भी यही है।

हिन्दू धर्म की विशेषता उसका लचीलापन है। हमने देश, काल और परिस्थिति के अनुसार स्वयं को बदला और सुधारा है; पर मजहबवादी आज भी लकीर के फकीर बने हैं। किसी ने कहा है –

झुकेगा वही, जिसमें कुछ जान है।
अकड़ खास मुर्दे की पहचान है।।

हम जीवन को याद रखते हैं, मृत्यु को नहीं। हम बलिदान को याद रखते हैं, सत्ता के बर्बर संघर्ष में हुई मौतों को नहीं। हम 'जियो और जीने दो' के पुजारी हैं, 'मारो और मरो' के नहीं। जो जीवन की पूजा करते हैं, वे कभी मरते नहीं, मरेंगे भी नहीं। भले ही कालक्रम में उन्हें कुछ सौ या हजार साल पराजय और गुलामी का दंश झेलना पड़े। जो मृत्यु के पुजारी हैं, वे मिटकर ही रहेंगे। भले ही वे कुछ सौ या हजार साल जीतते हुए दिखायी दें।

सृष्टि का यह सनातन नियम है। इसीलिए हम अजर, अमर और अविनाशी हैं। ऐसे संकट पहले भी आये हैं, जिन्हें हमने हर बार कुचला है। इस बार भी ऐसा ही होगा। बस, आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दू धर्म की जिन विशेषताओं की चर्चा हम मुँह से करते हैं, अपने धर्मग्रन्थों से प्रेम और सामाजिक समरसता के जो उद्धरण हम प्रायः देते हैं, उन्हें व्यवहार में लाना प्रारम्भ कर दें। ◻

– संकटमोचन आश्रम, रामकृष्णपुरम्, सेक्टर ६,
नयी दिल्ली– ११००२२

ऐसे हुआ 'गजेन्द्र-मोक्ष'

– डॉ. शिवनन्दन कपूर

भारतीय इतिहास साक्षी है। प्रति पृष्ठ पर मुखर है, दीप्त है। जब-जब इस देश पर मौत के, महानाश के मेघ मँडराये, हर हाथ ने हथियार उठाये। स्वाधीनता के गीत गाये। बलि-पथ पर ही पंक्तिबद्ध होते रहे। 'जय महाकाल' के रोष भरे घोष से गगन गूँजा। दिशाएँ काँपी थीं। अरि-दल थर्रा उठा था। संरक्षक तो सजग हुए ही थे। उन रण-रंगी शूरमाओं में राणा प्रताप, महाराष्ट्र-मणि शिवा जी, पंजाब में गुरु गर्जना करनेवाले गुरु गोविन्द सिंह तथा बुन्देलखण्ड में छीजते रहकर भी आजादी का छत्र ऊँचा उठाये रखनेवाले छत्रसाल अग्रणी थे। सदा मृत्यु का वरण करने के लिए तत्पर, अभय चारण, सरस्वती के आभूषण कविकुल भूषण ने गदगद हो छत्रसाल की प्रशस्ति में मुक्तकण्ठ से गाया था, "साहू को सराहौं कि सराहौं छत्रसाल को।"

उस काल तक बुन्देला वीर वृद्ध हो चले थे। फिर भी उस बूढ़े शेर की दहाड़ से पहाड़ के भी हाड़ काँपते थे। बुन्देलखण्ड के अन्य राजा और जागीरदार घुटने टेके मौन घुट रहे थे। अपने सुख, निजी सुरक्षा के लिए उन्होंने 'वैतसी वृत्ति' अपना रखी थी। पानी के किनारे, लहरों के साथ, इधर-उधर मुड़ते बेंत को देखिये। यह दूसरों पर प्रहार कर सकता है; पर उसके अपने चरण जीवन-रण के संघर्षण का दम नहीं रखते। वात का आघात लगा, लहरों ने लात मारी, वे नत हो गये। समय मिला, तो फिर 'सीधे हो लिये; पर छत्रसाल न तो चाटुकार थे, न चोंचले वाले। उनमें पानी था। उनकी तलवार में धार थी। धार में पानी था; चमक थी। वे तो अपनी धरा के टुकड़े पर भी आक्रामक की छाँह नहीं सहन कर पा रहे थे। सिरोही की बनी उनकी असि अरि के सिर पर नागिन-सी ही उछलकर आघात करती थी। वे निश्चय में अडिग थे। उनका अश्व सरलता से मुड़ जाता था। दोनों ही किसी भी दशा में टूटना न जानते थे। अवसर पाते ही वह केहरी अपनी कन्दरा से ललकारता निकलता था। देखते-देखते कोई किला, भूमि आक्रमणकारियों के अधिकार से, ढलती धूप-सी सरक जाती थी।

वीरों के सरताज छत्रसाल ने घोषणा कर रखी थी– न मैं राज दूँगा, न ताज। न मुगलों का मोहताज बनूँगा। राज क्या, उन्हें कभी 'खराज' (कर) भी देनेवाला नहीं। अहलकारों से ऐसे 'खरीते' पाकर दिल्ली का बादशाह आपे से बाहर, आग-बबूला हो रहा था। बात सहल तरीके से हल न होते देखकर उसने कठोर अस्त्र सँभाला। सबके हाथ उठा लेने, हाथ खींच लेने पर बादशाह ने कई मोर्चों पर जौहर दिखानेवाले बंगश पर यह भार सौंपा। उस समय इलाहाबाद का सूबेदार मोहम्मद खाँ बंगश ही था। उसके लिए यह आदेश चुनौती ही नहीं, प्रसन्नता का सन्देश था। युद्ध में उसे आनन्द आता था। फिर छत्रसाल ने कालपी के अलावा सीमा से लगते उसके भी कुछ अधिकृत क्षेत्रों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। 'उसकी युद्ध-लिप्सा में प्रतिशोध की आहुति भी पड़ चुकी थी। सबसे बड़ी बात उसे बादशाह से हर साल दो लाख रुपये मिला करते थे। इस काम की सफलता के बाद वह बादशाह की नजरों में और ऊँचा उठ सकता था। उसने प्रस्ताव ही न अपनाया, तत्काल आक्रमण के लिए सैन्य-वृद्धि हेतु धन भी माँगा। धन ही तो साधन का मूल है। उसे तत्काल सहायता मिल भी गयी। उसने सेना में भर्ती जोरों से प्रारम्भ कर दी। साथ ही फौज को बराबर रसद मिलने का इन्तजाम किया। उसका अनेक युद्धों का अनुभव काम आ रहा था। सेना के साथ वह छत्रसाल को घेरने बढ़ चला। छत्रसाल को सूचना मिल चुकी थी। वे असावधान न थे। दुर्ग में रसद के साथ पानी का प्रबन्ध होने लगा। समाचार मिलते ही सैनिक और किसान भी आकर उनके ध्वज के नीचे एकत्र होने लगे। सिलहखानों में रात-दिन निरन्तर काम होने लगा। जागीरदारों ने साथ न दिया। पेड़ की शाखा ही बेंट बनकर कुल्हाड़ी में लगती है। उससे ही वन साफ हो जाता है। छत्रसाल अपनी छोटी-सी सेना और पुत्रों के साथ मोर्चा लेने के लिए तत्पर हो गये।

जैतपुर के पास भयानक युद्ध हुआ। बुन्देले वीर मुगलों से गुँथ गये। दोनों ओर से तीरों की बौछार होने लगी। महाराज ने चन्दावल या सेना के पृष्ठभाग में कुछ सैनिक रखे थे। शेष युद्ध में लगे थे। हरावल दस्ते के आगे उनके चुने गजराजों का समूह था। उनकी शुण्डों में लोहे की जञ्जीरें थीं। उनके सिर पर लोहे के भारी गोले थे, लम्बी कीलों वाले। प्रशिक्षित गजेन्द्र जब सूँड़ में कीलोंवाले गोले जकड़े उन्हें तीव्र-गति से घुमाते बढ़ते, तो विरोधियों के छक्के छूट जाते। सेना की कतारें काई-सी फट जातीं। महाराज के संकेत पर गज-सेना जञ्जीरों को चक्राकार वेग से घुमाती बढ़ी। गिरि से गजों के गोलक-प्रहार से प्रलय हो गया। सर फटे। भुज कटे। लगा, बंगश की फौज में भगदड़ मच जायेगी; किन्तु बंगश विचलित न हुआ। वह हाथियों के इस करतब से अजाना न था। उसने जोर से आदेश दिया, बान दागो।

बंगश की ओर से सनसनाते, वज्र से 'बान' छूटने लगे। सोंऽऽऽ की कर्णभेदी ध्वनि गूँजती। आकाश में आग की लकीर-सी खींचते वे बान छत्रसाल की गज-सेना के बीच गिरकर फटने लगे। गजों का मुख घूम गया। अब उनका रुख अपनी ही टुकड़ी की ओर था। भीत और भ्रान्त गज यह नहीं देखते, सम्मुख व्यक्ति किस पक्ष का है। बस, बेतहाशा भागते, रौंदते हैं। 'बान' आज की 'हवाई' जैसी विस्फोटक छड़ी होती थी। गजों की गति और संगति में असंगति तथा विसंगति उपजाने के लिए ही इसका प्रयोग होता था। पताकायुक्त होने से यह शोभा-यात्राओं में भी स्थान पाती थी। (इर्जटन, आइन-ए-अकबरी)। भूषण ने भी इसका उल्लेख किया है, "गोली तीर बानन के।" यह इसी स्थिति का चित्र है। तीर और बान दोनों को एक मानते लोग इसे 'वाण' का विकृत रूप समझने लगते हैं।

छत्रसाल ने देखा, बाजी पलटने जा रही है। वे बंगश की तलाश में बढ़े। उनकी मान्यता थी, साँप के फन उठाने पर गोफन से उसका तत्काल दमन कर, धरा में दफन कर देना ही उचित है। बंगश लड़ाई के हर फन में माहिर था। इसीलिए उसने 'बान' का उचित समय पर प्रयोग किया। दोनों ओर से तीरों की बौछार हो रही थी। अब उनमें 'बानों' की सनसनाहट और मिल गयी। महाराज ने गजपालों को हाथियों को सँभालने का आदेश दिया। स्वयं गरुड दृष्टि से सैन्य भेदते, निर्भय मुगल सेना में धँस चले। वाणों के प्रहार विकट थे। उन्हें बचाता महावत गज को तेजी से इधर-उधर हटाता बढ़ रहा था। सहसा छत्रसाल को अपना आखेट दिखायी दे गया। उन्होंने अपना बर्छा तौलकर उस पर फेंका। उनका लक्ष्य अचूक होता था; पर दुर्भाग्य से बंगश के सतर्क गज-चालक ने द्रुत-गति से हाथी को झुकने का संकेत किया। प्रशिक्षित गजेन्द्र झुका। बंगश भी उसके साथ ही नत हो गया था। इस कारण झोंक में फेंका गया बर्छा सनसनाता उसके सिर पर से निकल हौदे के पिछले भाग से टकराया। बंगश ने भी विना रुके अपना बर्छा चलाया। तत्क्षण किये वार के कारण छत्रसाल का महावत सतर्क न हो पाया। उस वार के प्रहार ने छत्रसाल के वक्ष में घाव कर दिया। रक्त अधिक निकलने तथा अवस्थाजन्य दुर्बलता से वे संज्ञाहीन होने लगे। उनकी विकट अवस्था देख गजपाल हाथी को वहाँ से दूर, सुरक्षित स्थान पर ले आया। महाराज को होश आया। रणभूमि से हटा लाने पर वे महावत पर अत्यधिक कुपित हुए। वीर तो मरण से पूर्व रणभूमि नहीं छोड़ना चाहता। महाराज के न रहने से हताश बुन्देलों ने हार मान ली। उनकी थोड़ी-सी संख्या और कम हो गयी थी।

इस पराभव तथा अल्प सैनिक-बल होने पर भी महाराज न तो हताश हुए थे, न पराजय मानी थी। वे महाराज शिवा जी का आदर्श ले, छापामार हमले करते रहते थे। ऐसे छोटे युद्ध करते भी बारह मास बीत गये। तन शिथिल हो रहा था। जैसे जर्जर नाव में धीरे-धीरे जल भरने लगता है, वैसे ही हारे हृदय में हताशा हहराने लगी थी। मन में चिन्ता कसक रही थी। स्वतन्त्रता का मुखर शंख अब मौन हो जायेगा ? मुगलों से मातृभू को मुक्त कराने का संकल्प पूरा न होगा ?

सूर्य के अस्त होते-होते कालिमा जग को दबोचने लगती है। उस दिन महाराज चिन्ता-मग्न बैठे थे। राजपुरोहित आये। स्वस्ति-वाचन किया। छत्रसाल को उदास देख वे बोले, "देव ! हारे को हरि नाम। इस भावना के अपहार के लिए आपको 'गजेन्द्र-मोक्ष' की गाथा सुनाता हूँ। संकट में तिनके का सहारा भी बहुत होता है। वह तो सर्वसमर्थ है। स्वामी ! श्रवण करें। आत्म-बल मिलेगा।" अनुमति पा वे कथा सुनाने लगे।

चन्द्र की चाँदी-सी चमकीली किरनों में दिपता, लहरों से फेनिल क्षीर-सागर दूध के सिन्धु का भ्रम उपजाता। तट पर ही तीन शिखरों का त्रिकूट गिरि। इसकी एक चोटी शशि की रुपहली रश्मियों से रजत रूप लेती। दिनमणि अपनी दीप्ति से सोने-सा सजाता। त्रिकूट या सुपेल का एक शृंग पथराया लोहे-सा लगता। इसी के ऊपर पश्चिम के दिक्पाल, सागर-स्वामी वरुण का महल था। जल-संरक्षण तथा पर्यावरण-प्रिय वरुण ने घाटी पर हरियाली की हृदयहारी चादर चढ़ायी। मन्दार, पारिजात, पनस, पलाश के पौधे लगाये। मत्स्य के ताल में हंस, सारस, चक्रवाक सदा किलोल व कूजन करते थे। इसीलिए उद्यान 'ऋतुमान' कहाता था। (भागवत पुराण, आठवाँ अध्याय)।

जो तपता है, वह गिरता है। उस दिन भी यही हुआ। तपन का पतन गगन-सागर में होते न होते, उसके ताप से तपा गज-दल पौधों को रौंदता, तरुओं को तोड़ता, सर के समीप सरकता आ रहा था। चिंग्घाड़ से वन में, पवन में, दिशाओं में कम्प था। त्रास था। आकाश में रक्तिम आभा... जैसे आतंक का आवास। कहीं चैन का आभास नहीं। कुल में करि, करिणियाँ और नन्हें कलभ भी थे। वे चपलता से आगे-पीछे या गजराज के नीचे से भाग रहे थे। सरसी के सन्निकट पहुँच गजराज ने जी भर जल पिया। फिर शुण्डों से फुहार छोड़ने, देह पर छिड़काव के साथ जल-क्रीड़ा में मगन हो गये। धूप की धमक कम हुई। मृत्यु के अनेक मार्ग हैं। सुख और सुरक्षा के लौह-भवन में भी वह नागिन-सा नन्हा छिद्र खोज ही लेती है। ताल में रहनेवाले ग्राह को भी राह मिली। सरककर, निःशब्द उसने गजराज का पाँव नुकीले दाँतों के शिकञ्जे में जकड़ लिया। पकड़ से छूटने का गज भरपूर प्रयास करता रहा। गजेन्द्र विशाल देह का तथा बली था; पर काल से बली कौन ? जल में तो नक्र का ही चक्र चलेगा। पानी में उसे भार का भी आभास नहीं होता। हथिनियों ने मदद की; पर व्यर्थ। कोई चारा न देख, गज ने लाचार, हार हरि की गुहार की। वेदरक्षक होने से 'वैधृति' कहानेवाले, हरि क्या संकट न हरेंगे? एक कमल ले, आह्वान किया–

"ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकं।
पुरुषायादिबीजाय परेशाभिधीमहि।।" भागवत, ८/३/२

(सबके मूल, प्रभु सब में पुरुष रूप में विद्यमान, जगत्पति! मरण-मुख में पड़ा शरणागत हूँ। करुणाकरण रण में हार गुहार लगा रहा। दीनबन्धु ! इस बार उबार लो। आपके अतिरिक्त इस विकट संकट से कौन उद्धार करेगा?)।

अन्तर में अर्चना। अधर मौन। पल-पल विकल पीड़ा झेलता, काल से खेलता गजराज। ताल लहू से लाल हो उठा था। शत्रु साँसों की डोर थाम, प्राण ही खींच रहा था। कौन त्राण करेगा ? लोचनों से, व्यथा के, विवशता के, व्रीडा के आँसू भरभरा रहे थे। देव ! यह हार नहीं, भाग्य का प्रहार है। संसार कहेगा, हाथ पर के ग्राह ने पहाड़-से हाथी को हाथोंहाथ हर लिया। नाथ ! अब कोई हाथ धरनेवाला नहीं। त्राहि माम्।"

मर्म से उभरी करुणा भरी अर्चना यज्ञ-धूम-सी पावन, सहज

(शेष पृष्ठ ६५ पर)

शुद्धि–पत्र

अंक	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
जनवरी	५	१०	आई.सी.आई.	आई.एस.आई.
"	४५	८	मयल	मलय
"	४५	१२	धरा	धरा पर
"	४५	२३	रचाने	रचने

शिव-पार्वती परिणय का पावन प्रसंग
महाशिवरात्रि

– प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय

शिवरात्रि महाशिव के पावन परिणय का प्रसंग है। यह परिणय शिव और उनकी शक्ति के सम्मिलन और सामरस्य का प्रतीक है। विना शक्ति (इ) के शिव मात्र शव है। यह तारकासुर सहित समस्त आसुरी शक्तियों के संहार का शुभ संकेत है। देव-सैन्य के भावी सेनानी स्कन्द अथवा स्वामि कार्त्तिकेय के अचिर अवतरण की आतुर प्रतीक्षा का पर्व है। यह सती के दाह से खिन्न शिव की सुदीर्घ समाधि और पार्वती के दारुण तप के मध्य छिड़ी प्रीतिमय प्रतियोगिता के सुखद समापन की वेला है। उमा की जननी मेना और जनक हिमाचल के उत्कण्ठित धैर्य के मधुर प्रतिफल में परिणत होने का मंगलमय आयोजन है। वैयक्तिक साध्ना के लोककल्याण-हेतु सन्नद्ध होने के सुदृढ़ संकल्प की साक्षी है यह रात, जिसमें क्षण भर भी सोना नहीं है, बस जगना-ही-जगना है और जगाना है भोलेनाथ को। सोने का अर्थ है खोना और जागने का मतलब है शिव के असीम अनुग्रह का पात्र सिद्ध होना। शिव और शिवानी के द्वैत को अद्वैत में अन्तरित होते हुए देखना।

समग्र भारत ही शिव का स्वरूप है। राम अयोध्या के हैं, कृष्ण मथुरा के हैं, द्वारका के हैं; लेकिन शिव पूरे भारत के हैं। उनके द्वादश ज्योतिर्लिंग भारत भर में बिखरे हैं। हिमाद्रिगत कैलास हो सकता है उनका स्थायी पता– ठिकाना हो; लेकिन उनके त्रिशूल पर बसी काशी, उनकी जटाओं और अलकों (शिवालिक की पहाड़ियों) पर आरूढ़ पंजाब और उसके समीपस्थ प्रदेश, मध्यभागस्थ महाकाल और ओंकारेश्वर, रत्नाकर के अंक में प्रतिष्ठित रामेश्वर, नेपाल के काष्ठमण्डप (काठमाण्डू) में विराजमान् पशुपतिनाथ शिव के भारतीय ही नहीं, बृहत्तर भारतीय होने के द्योतक हैं। सच तो यह है कि भोले बाबा इस देश की गली–गली में ही नहीं, जन-जन के हृदय में प्रतिष्ठित हैं। शिव की सर्वोपरि लोकग्राह्यता का इससे बढ़कर और क्या प्रमाण हो सकता है कि गंगोत्री से गंगा-जल लेकर नंगे पाँव महीनों तक पैदल चलकर शिवभक्त रामेश्वरम् सहित विभिन्न शिव मन्दिरों में पहुँचकर उनका अभिषेक करते हैं। वे यथार्थ में ही जन-देवता हैं, जो धनियों और धनहीनों के सपनों को समानरूप से साकार करते हैं। 'रामायनि सिंगार' (पाण्डुलिपि रूप में उपलब्ध) के रचयिता कवि शिवबख्श राय के अनुसार शिव आवश्यकतानुसार सभी को आकांक्षित वस्तु प्रदान करते हैं–

दीननि को दाम देत, कामिन को काम देत,
धरा धौल धाम देत, वाम देत रति को।
उत्तिम अराम देत, कीरत में नाम देत,
आठौ जाम जाम देत पय पीबो अति को।
कवि 'सिवबख्श' कहै सब काल कन देत,
सुन्दर सो तन देत, शील देत सति को।
मूढ़न को मति देत, ज्ञानिन को गति देत,
पावन सो पति देत पति पारबति को।।

लोक-मान्यताओं के अनुसार शिव की उपासना से जीवन में सब कुछ प्राप्त हो जाता है। पाणिनि सदृश वैयाकरणों को व्याकरण-रचना में शिव-कृपा ही सहायक सिद्ध हुई। सम्पूर्ण पाणिनीय व्याकरण के मूलाधार हैं १४ माहेश्वर सूत्र, जिनसे पूरी वर्णमाला और प्रत्याहार निष्पन्न माने जाते हैं। कालिदास जैसे महाकवियों के सहायक बने शिव, जिनके लिए शिव-पार्वती की युति ही वागर्थ है। यह दैवी युग्म ही वागर्थ-बोध (प्रतिपत्ति) का उनके लिए एकमात्र उपस्कर है। उन्हें पुनर्भव से छुटकारा केवल शिव ही दिला सकते हैं–

'ममापि च क्षपयतु नीललोहितः,
पुनर्भवं परिगत शक्तिरात्मभूः।'

कालिदास के द्वारा प्रणीत सभी नाटकों और काव्यों के मंगलाचरण महाशिव के स्वरूप-सन्धान हेतु ही प्रवृत्त परिलक्षित होते हैं। 'कुमारसम्भव' के महानायक ही हैं शिव। 'मेघदूत' की अन्तरात्मा भी महाकालेश्वर ही हैं। कालिदास के शिव का स्वरूप भी बड़ा विलक्षण है, जो पञ्चमहाभूतों– सूर्य, चन्द्रमा, यज्ञ और यजमान, सबसे मिलकर बना है। इस प्रकार यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही शिव का स्वरूप है। वे उपनिषदों के द्वारा निरूपित परब्रह्म हैं, 'ईश्वर' की संज्ञा एकमात्र उन्हीं में अन्वर्थ प्रतीत होती है। वे एक साथ ब्रह्मा, विष्णु और महेश की त्रिमूर्त्ति हैं। उनकी प्राप्ति केवल 'स्थिर भक्ति योग' से ही हो सकती है– **'स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभः।'** और इस स्थिर भक्ति योग-साधना की निदर्शन हैं भगवती पार्वती, जिसको निरूपित करने के लिए ही 'कुमारसम्भव' की रचना सम्पन्न हुई; लेकिन 'शिव पुराण' की तरह कालिदास ने भी शिव-स्वरूप को पूरी तरह समझने में अन्ततः अपनी
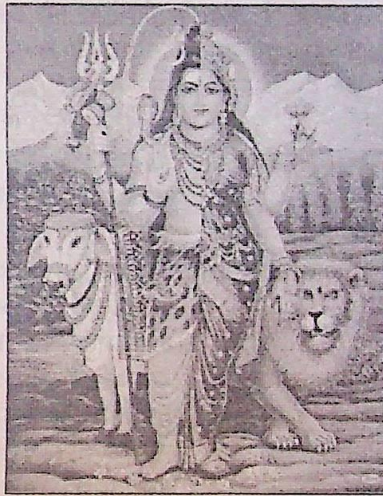
असमर्थता स्वीकार कर ली– **'न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः'**– शिव के यथार्थ स्वरूप को जाननेवाले ही कहाँ हैं ? कालिदास ही क्यों, 'कैवल्योपनिषद्' भी शिव को ठीक से कहाँ निरूपित कर पायी ! वह भी केवल इतना ही बतला पायी कि शिव अचिन्त्य (इन्द्रियों और मन से अज्ञेय) अव्यक्त और आनन्दस्वरूप हैं– **'अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं शिवं चिदानन्दमरूपमद्भुतम्)'** श्वेताश्वतर उपनिषद् (४.१८) के अनुसार सृष्टि के आरम्भ में जब कहीं कुछ नहीं था, तब भी केवल शिव का ही अस्तित्व था– **'यदा तमस्तन्न दिवा न रात्रिर्नसन्नचासच्छिव एव केवलः।'** यह उपनिषद् शिव का प्रतिपादन अद्वितीय, शान्त और शुद्ध रूप में करती है।

पश्चिमी विद्वानों ने अज्ञानवश शिव को अवैदिक और अनार्य बतलाने की दुश्चेष्टा की; लेकिन चारों वेदों में उपलब्ध शिवविषयक मन्त्र उनके मत को मिथ्या सिद्ध कर देते हैं। ऋग्वेद में १०६, शुक्लयजुर्वेद में १६८ और अथर्ववेद में शिव अथवा रुद्रविषयक १२६ मन्त्र प्राप्त होते हैं। यजुर्वेद का १६वाँ अध्याय शिवविषयक मन्त्रों का सबसे बड़ा आकर है, जिसमें ६६ मन्त्र एक साथ शिव के सर्वांगीण स्वरूप से हमारा साक्षात्कार कराते हैं। इन वैदिक मन्त्रों की लोक में प्रसिद्धि यद्यपि 'रुद्राध्याय' के रूप में है; लेकिन शिव और रुद्र अभिन्न हैं। ४१वें मन्त्र का यह अंश निदर्शनार्थ यहाँ प्रस्तुत है, जिसमें शिव के अनेक लोकप्रचलित पर्यायों की एक साथ प्रस्तुति है– **'नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च...।'**

(सांसारिक सुख और तदनन्तर मोक्षप्रदाता, कल्याणकारी, सुखकारक और मंगलमूर्त्ति शिव को बार-बार नमस्कार !) सामवेद में भी शिवोपासना के गान हैं।

पद्मपुराण, स्कन्दपुराण तथा शिव पुराण के परिशीलन से ज्ञात होता है कि सृष्टि-रचना के लिए उत्सुक शिव के मध्यभाग से रुद्रों की उत्पत्ति हुई– **'मध्यतो रुद्रमीशानं जनयामास शंकरः।** तात्पर्य यह कि एकादशसंख्यक रुद्र मूलतः शिव के अंश ही हैं। 'रुद्र' शब्द की व्युत्पत्ति 'रुद्' धातु से बतलायी गयी है, जिसका अर्थ है रोना अथवा रुलाना। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार मानव-शरीर में दस प्राणों (प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त तथा धनञ्जय) और एक आत्मा को मिलाकर ११ रुद्र अवस्थित हैं– ये जब मृत्यु के समय मानव-शरीर से निकलते हैं, तब घर-परिवार के लोगों को बरबस रुला देते हैं– यही इनका रुद्रत्व है। कुछ ग्रन्थों में पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों और मन में अधिष्ठित प्राणों के आधार पर ११ रुद्रों की व्याख्या की गयी। कतिपय पुराणों में ११ रुद्रों का शिव के अवतारों के रूप में वर्णन है। इनका आविर्भाव दैत्यों से पीड़ित देवों की प्रार्थना से हुआ। ये हैं– कपाली, पिंगल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, शास्ता, अजपाद, अहिर्बुध्न्य, शम्भु, चण्ड तथा भुव। शतपथ ब्राह्मण के एक स्थल पर अग्नि को ही रुद्र बतलाया गया है– **'अग्निर्वै रुद्रः।'** यह कथन, यदा-कदा दिखनेवाले अग्नि के भयावह रूप के आधार पर सम्भवतः किया गया है। इसी ब्राह्मण ग्रन्थ में अम्बिका को रुद्र की बहन कहा गया है– 'अम्बिका हवै नामास्य स्वसा।'

शिवोपासना के प्रसंग में 'शतरुद्र' शब्द बहुचर्चित है। शिव अथवा रुद्र के सौ नामों में से कतिपय बहुप्रचलित वेदोक्त नाम ये हैं– गिरीश अथवा गिरिश, अधिवक्ता, सुमंगल, नीलग्रीव, सहस्राक्ष, कपर्दी, मीढुष्टुम, हिरण्यबाहु, सेनानी, हरिकेश, अन्नपति, जगत्पति, क्षेत्रपति, वनपति, वृक्षपति, औषधिपति, सत्त्वपति, पापीपति, स्तेनपति, तस्कर, गिरिचर, सभापति, श्वपति, गणपति, व्रातपति, विरूप, विश्वरूप, भव, शर्व, शितिकण्ठ, शतधन्वा, ह्रस्व, वामन, बृहत्, वृद्ध, ज्येष्ठ, कनिष्ठ, श्लोक्य, आशुषेण, आशुरथ, कवची, श्रुतसेन, सुधन्वा, सोम, उग्र, भीम, शम्भु, शंकर, शिव, तीर्थ्य, व्रज, नीललोहित, पिनाकी अथवा पिनाकधारी, सहस्रबाहु तथा ईशान प्रभृति।

इनमें से अनेक नाम महाशिव के व्यक्तित्व की विभिन्न विशेषताओं के द्योतक हैं और वे प्रायः सर्वविदित भी हैं; लेकिन कुछ नाम विरोधाभासी भी हैं– जैसे पापीपति, स्तेनपति, तस्कर इत्यादि। **वास्तव में, शिव का पूर्ण व्यक्तित्व बड़ा विलक्षण है और वे विकृतियों से ग्रस्त प्राणियों के भी उद्धारक हैं– उन्हें बुराइयों से मुक्त कराकर उन पर भी अपने अनुग्रह और वात्सल्यराशि को न्योछावर कर देते हैं।**

भगवद्गीता में जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने विश्वरूप का उद्घाटन किया है और दुर्गा–सप्तशती में भगवती का विश्वरूप वर्णित है, जिसमें तृष्णा, लज्जा, क्षुधा, घृणा, चिति (चेतना), दया, कृपा और ममता प्रभृति देवी के समस्त रूपों का समावेश है, ठीक उसी प्रकार, 'शतरुद्रिय' की अवधारणा रुद्र अथवा शिव के विश्वरूप के अनावरण से सम्बद्ध है। जीवन में पुण्य-पाप, शिव-अशिव, मंगल-अमंगल, राग-द्वेष, प्रेम-घृणा इत्यादि में कुछ भी ऐसा नहीं है, जो रुद्र अथवा शिव के स्वरूप में अप्राप्य हो। वस्तुतः शिव का यह स्वरूप जीवन की समग्रता की स्वीकृति और अभिव्यक्ति है। जीवन जैसा भी है, आपदाओं और उत्सवों का मिला-जुला रूप, आग और राग का सम्मिलित संगीत, हर्ष और विषाद का समवेत स्वर– सब कुछ शिव में समाहित है। वे श्मशानवासी होते हुए भी परम मंगल के विधायक हैं। कर्मकाण्ड से थोड़ा हटकर यदि सोचा जाये, तो शिव जीवन के यथार्थ हैं। उनके संस्पर्श से कुरूप भी सुरूप हो जाता है, पापी भी पुण्यात्मा बन जाता है, अमंगल भी मंगल बन जाता है, बीभत्स भी शृंगार में परिणत हो जाता है– संक्षेप में शिव सर्जक भी हैं और संहारक भी। शिव-विवाह में सम्मिलित वरयात्रियों की विभिन्नता और विविधता यदि महाशिव की इसी विलक्षणता की द्योतक है तो शिव-विवाह का यह आयोजन शिव को आध्यात्मिक साधना में भरपूर तपे सौन्दर्य से जोड़ने की मांगलिक अभीप्सा है। □

– बी–१/४, विक्रान्त खण्ड, गोमतीनगर,
लखनऊ– २२६०१० (उ.प्र.)

भगवत्कृपा

– डॉ. रमेश चन्द्र नागपाल
(भूतपूर्व प्रोफेसर, विधि–विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय)

एक भक्त भगवान् के मन्दिर पहुँचा। हीरे, सोने, चाँदी का ढेर-सा चढ़ावा चढ़ाया। मूर्ति के सम्मुख साष्टांग दण्डवत् करके प्रार्थना करने लगा, "अब आप ही मेरी इस संकट से रक्षा करो; घर और बाहर के जिन लोगों के लिए मैंने ये अनुचित कार्य किये, उन्होंने साथ छोड़ दिया है; अपने-पराये जिन लोगों के परामर्श से किये, उन्होंने भी किनारा कर लिया है; अब तुम्हीं मेरे तारनहार हो।" उसने बचपन में एक प्रार्थना सीखी थी, उसे ही पढ़ने लगा–

पितु-मातु सहायक-स्वामि-सखा,
तुम ही एक नाथ हमारे हो।
जिनके कछु और अधार नहीं,
तिनके तुम ही रखवारे हो।।

भक्त को ऐसा प्रतीत हुआ कि भगवान् उससे वार्त्ता कर रहे हैं, "वत्स ! तुम्हें वाल्मीकि ऋषि की वह कथा तो विदित ही थी, जब उसने नारद जी को पकड़कर लूटना चाहा था। यह कथा मनुष्यों के शिक्षण के लिए ही तो कही जाती है; जब तुमने कुमार्ग अपनाया, तब क्यों भूल गये कि पकड़ा जाने पर, जिनको तुम लाभ पहुँचा रहे हो, वे सब पल्ला झाड़ लेंगे।"

> **"अजर-अमर होकर तो आये नहीं। एक दिन जाना तो है ही, सभी को जाना है। तब मृत्यु से क्या भय ? भय को जीतो, तभी तुम्हारी जीत है।"**

"प्रभो ! सुनी है यह कथा घर के बड़े-बूढ़ों से; पढ़ी भी है; परन्तु मैं सोचता था कि अपनी चतुराई तथा साथियों के सहयोग से बचा रहूँगा, फसूँगा नहीं।"

"वत्स ! जिसे तुम चतुराई कहते हो, वह झूठ बोलना ही तो है। यह कुबुद्धि है और अनुचित कार्य करने में साथ देनेवालों में से कोई पक्का साथी नहीं होता। संकट आने पर सब अपने को बचाने के लिए भाग खड़े होते हैं, अपने भी, पराये भी।"

"हाँ भगवन् ! अब देख तो यही रहा हूँ; परन्तु तब मैं यह सोच नहीं पाया।"

"तुम अपने स्वार्थ की कुबुद्धि के वश यह नहीं सोच पाये वत्स !"

"हाँ प्रभो ! मैं कुबुद्धि के वश में ही था; आप मुझे सुबुद्धि दो।"

"सुबुद्धि का मार्ग यह है वत्स ! कि जाँच करनेवालों को तुम सच बता दो; सब कुछ सच-सच बता दो।"

"प्रभु जी ! यह मार्ग तो बहुत कठिन है।" भक्त ने घबड़ाकर कहा।

"क्यों ? सत्य बोलने में क्या कठिनाई है ? जो बात जैसी है, वैसी कह देनी है; कोई लाग-लपेट नहीं करनी होती; कुछ जोड़ना-घटाना नहीं। सीधी बात कहने में तो मस्तिष्क पर कोई जोर लगाने का कष्ट नहीं करना पड़ता; झूठ बोलने में तो अवश्य जोर लगाना पड़ता है।"

"भगवन् ! कठिनाई यह है कि न जाने कितने छल-कपट से मैंने अतुल सम्मान और सम्पदा अपने लिए इकट्ठा की है। सच बोलने पर वह सब धराशायी हो जायेगा। मेरा सारा सम्मान लुट जायेगा, सारी सम्पत्ति लुट जायेगी।"

"यह सम्मान बढ़ भी सकता है, वत्स ! बढ़ जायेगा। वाल्मीकि ने जब कुपथ त्याग दिया, तब कोई भी उसके अतीत के बुरे कामों को याद नहीं करता। सत्पथ पर आने पर सब उसके ऋषिकर्मों का ही गान करते हैं। वत्स ! साहस करो, धैर्य धरो। कुछ दिन ही अपचर्चा होगी। उसके पश्चात् तुम्हारी सच्चाई का ही गुणगान होगा।"

"प्रभुजी ! एक संकट और है इस मार्ग में। मेरे द्वारा सच–सच बोलने पर अनेक प्रतिष्ठावान् लोगों की कलई खुल जायेगी। वे बड़े दमदार लोग हैं। मेरी हत्या भी करवा सकते हैं।

"ठीक कह रहे हो वत्स ! इसका तुम निराकरण कर सकते हो। तुम बुद्धि का प्रयोग करो। बुद्धि सबसे बड़ा बल है। पहले परीक्षण करनेवालों को इस खतरे से आगाह करके अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध करवा लो। इससे तुम्हारे शत्रुओं की हिम्मत कम पड़ जायेगी।"... कुछ क्षण रुककर भगवान् ने आगे कहा, "संसार में वत्स ! तुम अजर-अमर होकर तो आये नहीं। एक दिन जाना तो है ही, सभी को जाना है। तब मृत्यु से क्या भय ? भय को जीतो, तभी तुम्हारी जीत है।"

भक्त साष्टांग दण्डवत् से उठकर बैठ गया और बोला, "बड़ा कठिन मार्ग दिखाया है प्रभो आपने। पता नहीं, जीवन किस मञ्जिल तक पहुँचेगा ?

"वत्स ! जीवन में मञ्जिल की चिन्ता नहीं करते। सदाचार के मार्ग पर चलते चलो, जहाँ पहुँचोगे, उसी को मञ्जिल मानो।"

धरोहर

...बुढ़ौनू जुग बदला

— गुरु प्रसाद सिंह 'मृगेश'

तुम करौ कबितई बन्द
बुढ़ौनू जुग बदला।

पछियाव बनी पुरवइया, सबिहौं गा बदलि रवैय्या
ई प्रगतिवाद के जुग माँ, को पूछै कबित-सवैय्या
ई दुर्मिल, मत्तगयन्द, बुढ़ौनू जुग बदला।

तुलसी-कबीर कै बानी, सड़ियल भै और पुरानी
केशव कवि के कवितन माँ, अब रहा न कौनो पानी
रचि-रचि मरिगे हरिचन्द, बुढ़ौनू जुग बदला।

रोला-छप्पै न बनाओ, कुंडलिया अब न सुनाओ
मनहरण-सोरठा-दोहा, मुँह बाय-बाय न गाओ
को इनका करै पसन्द, बुढ़ौनू जुग बदला।

सुर-ताल बिना पहिचाने, लय गीतन के बिन जाने
जस फूट संख मुँह बइहौ, पछितइहौ खुले खजाने
सब कहिहैं मूरखचन्द, बुढ़ौनू जुग बदला।

अब उइ गीतन कै पंती, जिनसे उनकै हृत्तंत्री
जो लिखि पइहौ तौ तुमरिउ, होइ सकी कबिन माँ गनती
तब आई कुछ आनन्द, बुढ़ौनू जुग बदला।

जिन माँ नखतन कै छाँही, रवि-चन्दा कै परछाँही
प्रेमिन के संग माँ घूमै, नित मौत दिहे गरबाँही
तुम का जानौ उइ छन्द, बुढ़ौनू जुग बदला।

की तौ अस खैंचो खाका, तौ जमै तुमारिउ साका
उइ गीत घरौवा गावौ, जस गावैं 'रमई काका'
कुछ बानिउ होय बुलन्द, बुढ़ौनू जुग बदला।

जौ अइसेन टेक निराली, तौ बेसहौ प्याला-प्याली
लखनऊ सहर माँ रहिकै, दस-बीस लिखौ कौवाली
समुझ्यो भाई खूसटचन्द, बुढ़ौनू जुग बदला।

तुम तौ पुरान बकवादी, नायिका भेद के आदी
का भूलि गयो भारत माँ, है मनइन कै आजादी
कवितौ होइगै स्वच्छन्द, बुढ़ौनू जुग बदला।
तुम करौ कबितई बन्द, बुढ़ौनू जुग बदला।

प्रस्तुति : अजय सिंह
'अक्षर-धाम', ४/३८३, आवास विकास कालोनी, बाराबंकी (उ.प्र.)

"ठीक है प्रभो !" भक्त ने कहा।

तब उसने मन्दिर की परिक्रमा की और मूर्ति के सामने आकर प्रणाम करके चलने को हुआ। तभी भगवान् ने उसे रोककर कहा, यह तो बताओ कि सोने का हीरों जड़ा मुकुट, हार आदि जो मुझ पर चढ़ाने को लाये हो, सफेद धन है या काला धन ? यदि काला धन है, तो इसे ले जाओ। मैं कालाधन स्वीकार नहीं करता। न जाने कितने विकास कार्यों में घपला करके, न जाने कितनों की सुख-सुविधा, यहाँ तक कि मुँह का निवाला भी छीनकर, समाज और देशद्रोह करके यह बनाया जाता है, यह तो चौर्यार्जन है, पापार्जन है। जरा सोचो तो, भगवान् इसे स्वीकार कर सकता है ?

भक्त ने चढ़ावे की बहुत-सी वस्तुएँ बटोर लीं।

देवस्थान से बाहर जाने से पहले वहाँ कुछ समय तक बैठ जाने की मान्यता है। भक्त वहाँ एकान्त में बैठ गया। सिर लटका हुआ, मुँह उतरा हुआ, मस्तिष्क में भयंकर विचार-संघर्ष। एक बार मन में आया, "चलो।" फिर आया "नहीं। अब तो यह निश्चय करके ही उठूँगा कि मुझे क्या करना है ? अरे अभागे ! अरे मूरख !! ऐरे-गैरे की अनर्गल बातें मानते रहे और अब भगवान् की मानने में सोच रहे हो कि क्या करूँ ?"

एकाएक उसके चेहरे पर दृढ़ता आ गयी, उठा। "अब कुछ नहीं सोचना। भगवत्कृपा से मुझे सम्यक् दृष्टि मिली है। मैं इसे छोड़ूँगा नहीं, इसे हाथ से निकलने नहीं दूँगा। वह जो भी करेगा, मैं उसी में अपना हित समझूँगा।" मन में यह सोचते हुए वह झूम उठा।

□

— सी-३७४, भूतल, सूर्य नगर, गाजियाबाद- २०१०११ (उ.प्र.)

राष्ट्रीय जीवन के सतत प्रेरणा-स्रोत
महामति आचार्य कौटिल्य

– डॉ. शैलेन्द्र नाथ कपूर
(पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ)

प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारकों में कौटिल्य का व्यक्तित्व अप्रतिम है। कौटिल्य नाम के अतिरिक्त इन्हें विष्णुगुप्त तथा चाणक्य नाम से भी अभिहित किया जाता है। एक प्राचीन भारतीय कृति 'अर्थशास्त्र' कौटिल्य द्वारा ही रचा गया है। 'अर्थशास्त्र' के ही एक स्थल में कहा गया है–

"जिसने अपने क्रोध से नन्द राजा के अधीन चली गयी भूमि, शस्त्र व शास्त्र का उद्धार किया, उसी ने इस अर्थशास्त्र की रचना की।" इससे स्पष्ट है कि यह सम्भवतः तीसरी-चौथी शती ई.पू. की कृति है।

विष्णु पुराण में इस विषय के सम्बन्ध में कहा गया है कि ब्राह्मण कौटिल्य नन्द वंश का अन्त करेगा। नन्द वंश के पश्चात् मौर्य राजा पृथ्वी का सुख भोगेंगे तथा मौर्य चन्द्रगुप्त को मगध के राजपद पर कौटिल्य अभिषिक्त करेगा। इससे यह पता चलता है कि नन्द वंश का अन्त करनेवाला, चन्द्रगुप्त मौर्य को सिंहासन प्रदान करनेवाला तथा अर्थशास्त्र का रचयिता कौटिल्य ही था।

कुछ प्राचीन भारतीय संस्कृत साहित्य की कृतियाँ अर्थशास्त्र से प्रभावित हुई प्रतीत होती हैं। इनमें कालिदास की 'रघुवंशम्', 'कुमारसम्भवम्', 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्'; याज्ञवल्क्य स्मृति; वात्स्यायन कृत 'कामसूत्र'; विष्णुशर्मा कृत 'पञ्चतन्त्र'; विशाखदत्त कृत 'मुद्राराक्षस' तथा बाणभट्ट कृत 'कादम्बरी' प्रमुख हैं। कामन्दक ने कौटिल्य-विष्णुगुप्त को अपना गुरु माना है– वे अपने गुरु के प्रति श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए यह बताते हैं–

"जिसने अति प्रतिग्रहशील प्रतिष्ठित कुल में ऋषियों के समान प्रसिद्ध वंश में जन्म लिया है; जो पृथ्वी पर विख्यात है; जो अग्नि के समान तेजस्वी है; जिसने एक वेद के समान ही ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्व इन चारों वेदों का अध्ययन किया है, जो वज्र एवं अग्नि के समान तेजस्वी है; जिसके वज्र-प्रहार के सुपर्वा श्रीमान् नन्दवंश रूप पर्वत समूल नष्ट हो गया; जो पराक्रम में साक्षात् कार्त्तिकेय के समान है; जिसने अकेले ही मन्त्र-शक्ति के प्रभाव से चन्द्रगुप्त को साम्राज्य दिया; जिसने महासमुद्ररूप अर्थशास्त्र से अमृत-रूप नीतिशास्त्र निकाला, उस असीम गुण-सम्पन्न विष्णुगुप्त के निमित्त नमस्कार है।"

कौटिल्य का ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' वस्तुतः राजनय से सम्बन्धित ग्रन्थ है। कौटिल्य ने मनुष्यों की जीविका को अर्थ, मनुष्यों द्वारा युक्त भूमि के अर्थ माना है। अतः उनके मतानुसार जो शास्त्र इस भूमि की प्राप्ति व इसकी रक्षा के उपायों का प्रणयन करे, वह 'अर्थशास्त्र' है।

कौटिल्य सामाजिक अनुबन्ध से राज्योत्पत्ति को स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं कि प्राचीन युग अराजकता का युग था। इस समय मात्स्य-न्याय का प्राबल्य था। इससे मुक्ति पाने के लिए लोगों ने विवस्वान्सुत मनु को अपना राजा बनाया। साथ ही राजा को अन्न की उपज का छठा भाग, व्यापार द्वारा प्राप्त धन से दसवाँ भाग तथा हिरण्य की आय का कुछ भाग देने का निश्चय किया; किन्तु यह भी स्पष्ट कर दिया कि प्रजापालक राजा ही इस भाग का अधिकारी होगा।

कौटिल्य के अनुसार राज्य सप्तप्रकृति युक्त है। राज्य की ये सात प्रकृतियाँ राज्य के सात अंग हैं– स्वामी, अमात्य, जनपद (राष्ट्र), दुर्ग, कोष, दण्ड (सेना) तथा मित्र (सुहृद्) आदि। अर्थशास्त्र के ही एक अन्य स्थल पर कौटिल्य ने प्रकृतियों को राज्य के अवयव माना है।

कौटिल्य अपने अर्थशास्त्र में यह निर्देश करते हैं कि राजा का प्रथम कर्त्तव्य प्रजा को प्रसन्न करना होना चाहिए। उनकी दृष्टि में राजा की अपेक्षा प्रजा पहले है। प्रजा की सुख-सुविधाओं और प्रजा के अभीष्टों के आगे राजा का अपना कोई सुख या अभीष्ट नहीं होना चाहिए। राजा तो मात्र प्रजा की सुख-सुविधाओं का व्यवस्थापक होता है। इस सन्दर्भ में कौटिल्य गुरुजनों व अमात्यवर्ग को निर्देश देते हैं कि उन्हीं को राजा की मर्यादा निर्धारित करनी चाहिए। राजा कोई अनर्थ न करे, इस बात का भी वे ध्यान रखें। राजा को सदाचार की साक्षात्मूर्त्ति होना चाहिए। राजा के चारित्रिक गुणों के सम्बन्ध में कौटिल्य
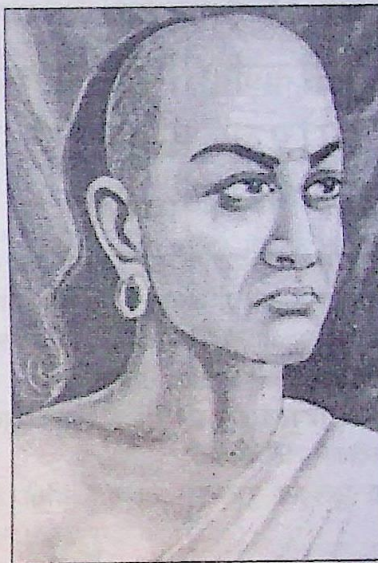
ने कुछ सीमाएँ निर्धारित की हैं। उच्च कुल में उत्पन्न, देवताओं के समान बुद्धि रखनेवाला, धैर्यसम्पन्न, दूरदर्शी, धार्मिक, सत्यवादी, सत्यप्रतिज्ञ, कृतज्ञ, उच्चाभिलाषी, उत्साही, शीघ्र कार्य करनेवाला, सामन्तों को वश में रखनेवाला तथा दृढ़बुद्धि आदि राजा की विशेषताएँ होनी चाहिए। कौटिल्य ने राजा के गुणों को अभिगामिक प्रज्ञा व उत्साह श्रेणियों के अन्तर्गत रखा है। साथ ही इन्हें वे आत्मसम्पद् अथवा स्वामिसम्पद् नाम से सम्बोधित करते हैं।

राज्य के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में कौटिल्य का कथन है कि यद्यपि ज्येष्ठ पुत्र ही राजपद का अधिकारी होना चाहिए; किन्तु यह तभी सम्भव है, जब वह राजा के योग्य गुणों से युक्त हो अन्यथा उसे राजपद से अलग मानना चाहिए। कौटिल्य ने ही 'अर्थशास्त्र' के एक स्थल पर स्वीकार किया है कि राजा के मर जाने के बाद राज-परिवार के उत्तम गुणों से युक्त अभिषिक्त राजकुमार को ही राजपद प्रदान किया जाना चाहिए। इसके अभाव में वे राजकन्या अथवा राजमहिषी को भी राजपद का अधिकारी मानते हैं। कौटिल्य के मतानुसार राज्य का शासन राजवंश के संरक्षण में ही सुरक्षित रहता है। ऐसे राज्य को शत्रु प्रायः सरलता से जीत नहीं पाते हैं और विना किसी बाधा के राजव्यवस्था सुचारु रूप से चलती है। कौटिल्य राजा की जाति में उत्पन्न पुत्र को राजा की वास्तविक सन्तति मानते हैं। असमान जातीय को वे उत्तराधिकारी नहीं मानते हैं। यह असमानजातीय पुत्र मन्त्रणा दे सकता है।

कौटिल्य का विचार है कि प्रत्येक कार्य का प्रारम्भ तद्विषयक मन्त्र निर्णय के बाद होना चाहिए। अमात्य-गण का कार्य राजा को समय-समय पर सचेत करना होता है। साथ ही वे विपत्तियों से राजा की रक्षा भी करते हैं। कौटिल्य ने मन्त्रियों के लिए 'अमात्य' शब्द का ही प्रयोग किया है। केवल कुछ ही अमात्य विशिष्ट होते हैं, जो मन्त्रणा देने का अधिकार रखते हैं। कौटिल्य के अनुसार राजा को तीन अथवा चार मन्त्रियों से ही मन्त्रणा करनी चाहिए। चार से

अधिक मन्त्री नहीं और तीन से कम नहीं होने चाहिए। इससे मन्त्रगुप्ति सम्भव हो पाती है। राजा को इस सम्बन्ध में समय, परिस्थिति व आवश्यकतानुसार मन्त्रियों को रखना चाहिए।

मन्त्रिपरिषद् की सदस्यता के लिए योग्यताएँ भी निर्धारित की गयी हैं। अपने देश (राष्ट्र अथवा जनपद) में उत्पन्न, उच्चकुल वाला, ललितकलाओं का ज्ञाता, बुद्धिमान्, तीक्ष्ण स्मरण-शक्ति-सम्पन्न, चतुर, बोलने में चतुराई रखनेवाला, प्रगल्भ, तर्क-वितर्क करनेवाला, प्रभावयुक्त, सहिष्णु, पवित्र, मित्र के गुणों से युक्त, स्वामिभक्त, समर्थ, स्वस्थ तथा धैर्यशाली, अभिमानरहित, स्थिर स्वभाव वाला, प्रियदर्शी, ईर्ष्या न रखनेवाला अमात्य पद के योग्य है।

मन्त्रिपरिषद् में एक अध्यक्ष होने का निर्देश कौटिल्य करते हैं; किन्तु यह अध्यक्ष राजा नहीं होता था। यद्यपि मन्त्रिपरिषद् की बैठकें अध्यक्ष की अध्यक्षता में सम्पन्न होती थीं; किन्तु आवश्यकता आ पड़ने पर राजा मन्त्रिपरिषद् को आहूत करता था। इन बैठकों में निर्णय सम्भवतः बहुमत से होते थे। जिस विषय की पुष्टि बहुमत द्वारा हो जाये, उसी निर्णय को स्वीकार करना चाहिए। **मन्त्रियों के वेतन के सम्बन्ध में कौटिल्य ने यह निर्धारित किया है कि वेतन इतना हो कि परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए कर्मचारी व उसके परिवार का भरण-पोषण सरलता से हो सके। यदि कर्मचारी का वेतन न्यून होगा, तो वह राजा व राज्य की हानि कर सकता है।**

अर्थशास्त्र से चर-व्यवस्था पर भी प्रकाश पड़ता है। राजनय में गुप्तचरों का प्रमुख स्थान होता है। प्रजा के कष्टों, दुःखों तथा अपराधों का पता लगाने हेतु ही सम्भवतः गुप्तचर-व्यवस्था प्रकाश में आयी। कौटिल्य ने कार्य के अनुसार ही गुप्तचरों के ६ विभाग किये हैं– १. कापटिक, २. उदास्थित, ३. गृहपतिक, ४. वैदेहक, ५. तापस, ६. सत्री, ७. तीक्ष्ण, ८. रसद और ९. भिक्षुकी। प्रत्येक श्रेणी के चर के दो वर्ग कौटिल्य ने किये हैं– ब्राह्मचर तथा आभ्यन्तरचर।

कौटिल्य ने यह निर्देश दिया है कि एक चरसंस्था के चर के द्वारा प्रस्तुत समाचार को दूसरी चरसंस्था से गुप्त रखना चाहिए। समाचार-गुप्ति रखने के लिए चरों को सांकेतिक गुप्त-लिपि का प्रयोग करना चाहिए। कौटिल्य के अनुसार संस्थाओं (कापटिक आदि गुप्तचरों) के विद्यार्थी अपनी विशिष्ट संकेत लिपि द्वारा उस सूचना को राजा तक पहुँचायें।

कौटिल्य का विचार है कि एक चर द्वारा लाया गया समाचार विश्वसनीय नहीं होता है। उसकी पुष्टि कम-से-कम तीन अन्य चरों द्वारा लाये गये समाचार से होनी चाहिए। कौटिल्य यह भी निर्धारित करते हैं कि पुनः पुनः मिथ्या समाचार लानेवाले चर को गुप्त रूप से दण्ड देना चाहिए।

विवादग्रस्त विषयों के निर्णय के लिए कौटिल्य ने विविध प्रकार के न्यायालयों की व्यवस्था दी है। कौटिल्य के अनुसार दो राज्यों या गाँवों की सीमा (जनपदसन्धि) पर, दस गाँवों

...ऋण के आँगन में

– डॉ. गोविन्द 'अमृत'

लोग निरन्तर पुण्य कमाने, बड़े-बड़े तीरथ जाते हैं।
पर छोटे हर घर का आँगन, मुझे अमरकण्टक लगता है।।

होती क्या है, मुझे ज्ञात है
कठिन अभावों की मजबूरी,
इसीलिए रहती है मेरे
पास सदा गाँवों की दूरी।

नफरत की स्याही से कोई, चाहे महाकाव्य लिख डाले,
संवेदन का एक वाक्य लिख लेना मुझको व्रत लगता है।
मुझे अमरकण्टक लगता है।।

उप-ग्रह के उपकरण सभी हैं
करते आज गगन की बातें,
किन्तु विरासत में हैं इनको
मिली पूर्वजों की सौगातें।

शोषण की ईंटों से कोई, महल गगनचुम्बी रच डाले,
पर मुझको तो इस धरती से, छोटा अम्बर तक लगता है।
मुझे अमरकण्टक लगता है।।

कठिन उपेक्षाओं को सहते
पहुँच गया श्रम चौथेपन में,
लेकर आस्थाओं को जन्मा
मरण हुआ ऋण के आँगन में।

जिन सुविधाओं को अपना कह, हथियाया है एक वर्ग ने,
उन सब पर मुझको तो पहले, केवल श्रम का हक लगता है।
मुझे अमरकण्टक लगता है।।

शेष न होंगी पिछड़ेपन की
जब तक प्रचलित सत्य कथाएँ,
मेरे लिए निरर्थक साथी
तरल भोग की सुख-सुविधाएँ।

भोलेपन में निश्छल श्रम की, सीमित इच्छाओं के आगे,
देवों का स्वर्गिक वैभव भी, मुझको महज नरक लगता है।
मुझे अमरकण्टक लगता है।।

– क्षिप्रा प्रेस, स्टेशन रोड, डाकघर– पेण्ड्रा रोड, बिलासपुर– ४६५११७ (छत्तीसगढ़)

के केन्द्र (संग्रहण) में, चार सौ गाँवों के केन्द्र (द्रोणमुख) में और आठ सौ गाँवों के केन्द्र (स्थानीय) में न्यायालय हों। इनमें तीन धर्मस्थ व तीन अमात्य निर्णय करने के लिए होने चाहिए।

अपराधी व्यक्ति के अपराध पर दण्ड किस प्रकार दिया जाये, इस सम्बन्ध में भी कौटिल्य ने विचार व्यक्त किये हैं। उनके अनुसार यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अपराध किस श्रेणी का है व किस सीमा तक किया गया है, अपराधी की सामर्थ्य क्या है, उसका वर्ण क्या है तथा क्या उसमें सुधार सम्भव है। कौटिल्य ने दण्ड को तीन मुख्य श्रेणियों में रखा है– अर्थदण्ड, कायदण्ड तथा कार्यदण्ड (बन्धनागरदण्ड)

राज्य-व्यवस्था के सुचारु रूप से सञ्चालन के लिए कौटिल्य ने कोष की आवश्यकता व उपयोगिता को सर्वोपरि माना है। उन्होंने कोष-सञ्चय के लिए समाहर्त्ता के कार्य के लिए कहा है कि वह दुर्ग, राष्ट्र-खनि, सेतु, वन, ब्रज, व्यापारपथों का निरीक्षण करे। दुर्ग के अन्तर्गत शुल्क, दण्ड, पौतव, नागरिक, लक्षणाध्यक्ष, मुद्राध्यक्ष, सुराध्यक्ष, सूनाध्यक्ष, सूत्राध्यक्ष, तेल-घी आदि का विक्रेता, सुवर्णाध्यक्ष, दुकान, वेश्या, द्यूत, वास्तुकार, कारुशिल्पीगण, मन्दिरों के प्रमुख द्वारपाल आदि से लिया गया धन आता है। राष्ट्र के अन्तर्गत सीता (खेती), भाग, बलि, कर, व्यापार, नदी पार करना, नाव का कर, कस्बों की आय, विवीत, मार्गकर, रज्जू व चोर रज्जू से प्राप्त धन आता है। खनि के अन्तर्गत सोना, चाँदी, हीरा, मोती, मूँगा, शंख, लोहा, लवण, भूमि आदि आते हैं। सेतु के अन्तर्गत पुष्पफल आदि हैं। वन के अन्तर्गत हिरण आदि पशु, लकड़ी आदि द्रव्य व हाथी आते हैं। ब्रज में गाय, भैंस, बकरी, भेड़, गधा, ऊँट, घोड़ा, खच्चर आदि पशु सम्मिलित हैं। वणिक्पथ में स्थलमार्ग व जलमार्ग हैं। ये सभी आय के साधन हैं।

कौटिल्य ने यह भी निर्देश दिया है कि राज्य का व्यय भी समुचित रूप से हो। देवपूजा, पितृपूजा, दान, स्वस्तिवाचन, अन्तःपुर, शाही रसोई, दूत, कोष्ठागार, शस्त्रागार, पण्यगृह, कुप्यगृह का व्यय, विष्टि, पैदल, हाथी,

घोड़ा तथा रथ पर व्यय, गाय, भैंस, बकरी आदि उपयोगी पशुओं पर किया गया व्यय, हरिण, पक्षी तथा अन्य हिंसक जानवरों की रक्षा के लिए किया गया व्यय, स्थान, लकड़ी, घास आदि के जंगलों की सुरक्षा के लिए राजकोष का व्यय होना चाहिए।

जनपद के संगठन के विषय में भी कौटिल्य ने अपना मत दिया है। जनपद के अन्तर्गत सबसे छोटी इकाई ग्राम होती है। गाँवों में मुखिया ही सर्वोपरि होता है। अर्थशास्त्र में गाँव के मुखिया को अन्य ग्राम वृद्धों की सहायता से शासन करने का निर्देश किया गया है। दो या दो से अधिक गाँवों में सीमा विवाद होने पर उसका समाधान पञ्चग्रामी अथवा दशग्रामी अधिकारी कर दें।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मण्डल सिद्धान्त की भी चर्चा है। राज्यों का पारस्परिक सम्बन्ध जिस सिद्धान्त पर आधारित है, वह मण्डल-सिद्धान्त है। कौटिल्य ने केन्द्र में विजिगीषु राजा की स्थिति स्वीकार की है। विजिगीषु राजा की विजय-यात्रा में आगे क्रमशः अरि, मित्र, अरिमित्र, मित्रमित्र, अरिमित्रमित्र तथा पीछे क्रमशः पार्ष्णिग्राह, आक्रन्द, पार्ष्णिग्राहासार, आक्रन्दासार आते हैं। इसके अतिरिक्त दो अन्य मध्यम व उदासीन भी हैं। इस प्रकार यह १२ राजप्रकृतियाँ हैं।

षाड्गुण्य के सम्बन्ध में कौटिल्य कहते हैं कि सप्तप्रकृतियाँ व द्वादशराजमण्डल छह गुणों के आधार हैं। षाड्गुण्य के अन्तर्गत सन्धि, विग्रह, आसन, यान, संश्रय, द्वैधीभाव आते हैं। राजा को इन छह गुणों का आश्रय लेकर क्षयावस्था को पार करके स्थान की और स्थानावस्था को पार करके वृद्धि की आकांक्षा करनी चाहिए।

कौटिल्य ने शक्ति अर्थात् बल के तीन भेद बताये हैं– ज्ञानबल, कोषबल, विक्रमबल। ज्ञानबल, मन्त्रशक्ति, कोष बल, प्रभुशक्ति, विक्रमबल उत्साहशक्ति है। कौटिल्य ने सेना के ६ प्रकार कहे हैं : मौलबल (राजधानी की रक्षा करनेवाली), भृतबल (वेतनभोगी सेना), श्रेणिबल (विभिन्न प्रदेशों में रखी गयी सेना), मित्र बल (मित्र राजा की सेना), अमित्रबल (शत्रुराजा की सेना) अटवीबल (जंगल की सुरक्षा हेतु सेना)। साथ ही वे हस्तिसेना, अश्वसेना, रथसेना व पत्ति (पैदल) सेना का उल्लेख करते हैं।

कौटिल्य ने दूत-व्यवस्था पर भी विचार प्रकट किये हैं। उन्होंने दूतों के तीन प्रकार बताये हैं– निःसृष्टार्थ, परिमितार्थ तथा शासनहर। अमात्य के गुणों को धारण करनेवाला निःसृष्टार्थ, एक चौथाई गुणहीन परिमितार्थ व आधा गुणहीन शासनहर होता है। दूत किसी भी स्थिति में वध्य नहीं होता है, चाहे वह चाण्डाल ही क्यों न हो।

संघ लाभ, सेना लाभ और मित्र लाभ इन तीनों में कौटिल्य संघ लाभ को उत्तम मानते हैं। संगठित संघ पर शत्रु का प्रभाव प्रतिकूल रहता है। □

– ए-३५४, इन्दिरानगर, लखनऊ–२२६०१६ (उ.प्र.)

कहानी

बड़ी माँ

– इन्दु गुप्ता

अनुभा की अत्यन्त लम्बी चाँदी-सी रात पर विराम-चिह्न लगाती सोने-सी भोर ने दस्तक दी, तो सुबह के सवा दस बज चुके थे। शिशिर की नर्म गुलाबी धूप के टुकड़े अल्हड़ शरारती खरगोशों की भाँति पूरे कमरे में, यहाँ तक कि उसके बिस्तर पर भी अठखेलियाँ कर रहे थे। उनके नाजुक स्पर्श को नजरअन्दाज करते हुए बिस्तर छोड़कर अपने पैरों को स्लीपरों में फँसाकर उन्हें घसीटते हुए वह सीधे माँ के कमरे में जा पहुँची। माँ नहा-धोकर पूजा-पाठ से निबटकर कुर्सी पर बैठी नाश्ता कर रही थीं। सामने रखी छोटी मेज पर नाश्ते की प्लेट में हरी-सब्जी, चटनी, दही की कटोरियाँ सजी हुई थीं और हमेशा की तरह सुप्रिया बड़े लाड़-मनुहार से आग्रह कर-करके उन्हें चपाती परोस रही थी। 'माँ थोड़ा दलिया लाऊँ। पापा के लिए बनाया था, आप भी चख के..'

"न सिया बेटा, अब बिल्कुल गुन्जायश नहीं रही। इतनी अच्छी मुलायम और नर्म रोटी बनाती है तू कि मैं अपने आप पर काबू नहीं रख पाती और लालचवश हमेशा ज्यादा खा लेती हूँ। इस रोटी के आगे क्या दलिया, क्या पोहा, क्या इडली-साँबर... मुझे कुछ नहीं भाता। हाँ रानी, मेरा नाश्ता तो हो गया। अब तुम भी कुछ खा लो।" माँ का सुप्रिया को सिया कहकर पुकारना अनुभा को फूटी आँख भी नहीं भाता।

"रिशी, रिया कहाँ हैं ?"

"सिया ने हर रोज की तरह उन्हें नहला-धुलाकर नाश्ता करवा दिया है। अब वे लॉन में अपने नानाजी के पास खेल रहे हैं।" मात्र ध्यान आकर्षित करने को सुप्रिया से पूछे अपने निरर्थक से प्रश्न का उत्तर माँ से पाकर सकपका गयी थी वह।

"लॉन में... क्या पापा आज अभी तक फैक्टरी नहीं गये।" उसका जगना पापा के जाने के बाद ही होता है, फिर आज क्या हुआ ? वह जल्दी जग गयी क्या ? असमञ्जस में थी वह...

"नहीं, आज उन्हें आयकर कार्यालय में काम है, इसलिए वे देर से जायेंगे।" माँ ने तटस्थ भाव से बताया, तो वह झेंप गयी।

तभी बच्चों का शोर सुनकर अचानक वह वहीं से कर्कश स्वर में चिल्लायी, "रिशी, रिया क्या कर रहे हो तुम। सुबह उठने के साथ ही खेलने, ऊधम उतारने के सिवाय तुम्हें कोई काम नहीं है क्या ?"

"अरे ! खेलें नहीं तो फिर क्या करें बच्चे। एक तो तुम अपने साथ उनकी पढ़ाई-लिखाई का कोई सामान लेकर नहीं आयीं, उस पर खुद सोकर तुम दोपहर को उठती हो। दिन, भी टी.वी. के आगे पड़ी रहती हो। तुम्हें तो यह तक पता नहीं होता कि बच्चे कब और क्या खाते हैं, कब और कहाँ सोते हैं, इसलिए तो..."

"ओ माँ ! आप भी... दीदी कुछ दिन को पीहर आयी हैं, तो इन्हें आनन्द लेने दीजिए।" सुप्रिया ने माहौल बदलने का जतन किया, फिर माँ के मुँह की बात और मूड बदलने की गरज से अनुभा से पूछने लगी, "दीदी ! आज नाश्ते में क्या लेंगी आप ?"

"रिशी, रिया ने क्या खाया ?" प्रत्युत्तर में उसने ढीठतापूर्वक बेशर्म-सा प्रश्न किया।

"आज उन्होंने ब्रेड-रोल्ज की फरमायश की थी, सो वही बना..."

"ठीक है ठीक है... मेरे लिए मक्खन दही हरी चटनी के साथ गोभी प्याज के भरवाँ पराठे बना दो, साथ में कड़क कॉफी..." कुछ सोचकर अनुभा ने सरोष ननदिया अन्दाज में सुप्रिया को साधिकार आदेश दिया और खुद गुसलखाने की तरफ बढ़ गयी।

"सिया बेटा ! देख तो लो, गोभी है भी या नहीं। तेरी ननद तो बस जुबान हिलाकर चल दी और तू उसके हुक्म

को बजाने..." अनुभा का रंग-ढंग देखकर माँ को कोफ्त हो रही थी; पर अपनी बेटी थी, उस पर शादीशुदा और दो बच्चों की माँ।

"गोभी है माँ। कल सायना को बस स्टॉप पर लेने गयी थी, तब लायी थी। जब तक दीदी नहा-धोकर आती हैं, मैं भरावन तैयार करके पराठे सेंक देती हूँ। दोपहर के खाने की तैयारी उसके बाद ही करूँगी।" कहकर वह रसोईघर में चली गयी।

अनुभा पिछले बारह दिनों से मायके में बसी हुई थी। हर दो-एक महीने बाद पति राहुल या सास-ससुर से लड़-झगड़कर यहाँ चले आना उसकी आदत में शुमार है; क्योंकि वह बहुत निकम्मी आलसी होने के साथ-साथ हद दर्जे की घमण्डी और लालची भी है। समायोजन उसके समझ-कोश के बाहर का तत्त्व है। ब्याह से पहले उसकी तुनकमिजाजी आलस्य और निकम्मेपन को अल्हड़पन और नादानी मानकर टालना अब सभी को बहुत महँगा पड़ रहा था। धन्य हैं उसके पति, ससुराल वाले, जो उसके साथ निभा रहे हैं।

माँ की बेरुखी से बौखलायी-भुनभुनायी-सी वह जान-बूझकर गुसलखाने में काफी समय लगाकर बाहर निकली और सीधा लॉन की तरफ चली गयी, जहाँ सर्दी की मीठी हल्की-धूप की सुखद गर्माइश में बैठे पापा अखबार पढ़ रहे थे। माँ को लॉन की तरफ आते देखकर रिशी, रिया धीरे से खिसककर छत पर खेलने चले गये। इतने दिनों में वह पहली बार लॉन में आयी थी; वरना वह कमरे में ही देर तक सोती और जगने के बाद दिन-भर अपने ढंग से वहीं टी.वी. के सामने बिस्तर पर पसरे-बैठे पसन्दीदा कार्यक्रम या फिल्में देखते हुए अपनी फरमाइश का खाना-पीना करती। उसके यहाँ आने-रहने तक बच्चों की जिम्मेदारी सुप्रिया ही सँभालती। आखिर हक बनता है उसका, भई ! मायके में जो आयी है।

नफासत से कटी-तराशी हरी घास, एक तरफ क्यारियों में नन्हें पौधों पर खिले कैंडीटफ्ट पैंसी बर्फ की खिलखिलाहट तथा दूसरी तरफ मुस्कराते बड़े-बड़े रंग-बिरंगे डहेलिया गुल-ए-दाऊदी तथा रस्सी पर लिपटकर टैरेस से झूलती लाल फूलों के गुच्छों से लदी वल्लरियों की मनमोहक खूबसूरती को दरकिनार कर वह वहीं खाली कुर्सी पर बैठ गयी; परन्तु पापा निर्विकार भाव से अखबार पढ़ने में तल्लीन रहे। बहुत दिन बाद पापा को यों फुर्सत में बैठे देखा था उसने। तब तक सुप्रिया उसका मनपसन्द नाश्ता परोस लायी। नाश्ते की प्लेट और कॉफी का प्याला हाथ में थामकर उसने बात शुरू करने की गर्ज से पूछ लिया, "पापा, आपने नाश्ता कर लिया ?"

"हूँ, कर लिया बेटा।" अपने सामने से अखबार एक ओर

हटाकर पापा ने उत्तर दिया।

"दीदी अचार भी लाऊँ क्या ?" एक और गरम पराँठा लेकर आयी सुप्रिया ने उससे पूछा, तो वह भड़क उठी...

"तुम्हें मालूम नहीं क्या कि हरी चटनी हो, तो मैं अचार नहीं लेती फिर... तुम जाओ यहाँ से बस। और हाँ, अब के पराँठा ज्यादा घी लगाकर करारा तल कर लाना" उसने फिर से सुप्रिया पर अपनी कड़वाहट उगली, जो पापा को भीतर तक आहत कर गयी।

"अनु, क्या हुआ तुमको, इतनी तुनककर क्यों बोल रही हो ? सुप्रिया तो तुमसे बहुत प्यार से खाने के लिए ही पूछ रही थी और तुम इतनी.... क्या समस्या है तुम्हारी ?"

"पापा वो... राहुल मेरा जरा भी ख्याल नहीं रखता। कभी-कभी तो पूरा महीना गुजर जाता है, मुझे कोई गहना, कपड़ा दिलवाये, शॉपिंग करवाये। उस पर उसकी माँ चाहती है कि मैं नौकरानी के पीछे-पीछे किचन या घर में घूम-घूम कर निगरानी रखूँ या उसे निर्देश दूँ, उससे काम करवाऊँ..." पापा की बात का अर्थ समझे-बूझे बगैर वह अपना चिरपरिचित रोना लेकर फट पड़ी, तो अपनी खीझ को दबाकर नियन्त्रित आवाज में वे उसे समझाने लगे, "हूँ, तो क्या गलत करती है, तुम उस घर की सदस्या नहीं हो क्या ? अपने घर में तुम काम नहीं करोगी, तो भला कौन करेगा ? क्या राहुल के माता-पिता तुम्हारे कुछ नहीं। और फिर तुम हर रोज नये गहने-कपड़े दिलवाने को ही प्रेम या ध्यान रखना क्यों समझती हो ?"

"पापा, मुझसे नहीं होता यह सब। मैं कोई नौकरानी हूँ क्या ? उन्हें मेरा घूमना-फिरना, किटी-पार्टियों तथा सहेलियों के घर जाना, उन्हें घर पर बुलाना कतई नहीं भाता। हालाँकि मुँह से कोई कुछ नहीं कहता; पर अब मैं कोई बच्ची नहीं कि उनके हाव-भाव से जान न पाऊँ। मुझसे उनकी ये हरकतें सहन नहीं होतीं। मैं गुस्से से बोलती हूँ, तो सबके सब इधर-उधर कमरों में दुबक जाते हैं। आपस में एक-दूसरे से कहते हैं कि मैं चिल्लाती हूँ, लड़ाकू हूँ, नौकरों और पड़ोसियों के सामने परिवार की बेइज्जती करती हूँ।"

"तब तुम उनसे भयंकर युद्ध करती हो, चरमबिन्दु आ जाने पर उन्हें उनके हाल पर छोड़कर बच्चों को संग लेकर अपनी आश्रयस्थली मायके आ जाती हो, है न। बेटा तुम क्या जानो कि ऐसे में मेरी स्थिति साँप-छछून्दर जैसी हो जाती है। तुमसे कुछ कह नहीं पाता और मन ही मन दामाद और समधियों से शर्मिन्दा महसूस करता रहता हूँ। तुम्हारी माँ भी घुलती रहती है; क्योंकि सभी जानते हैं तुम्हारे साथ ईगो-प्रॉब्लम है और कुछ नहीं; वरना..." बात पूरी करने तक पापा के ओंठों पर उभरी व्यंग्य-भरी मुस्कान ने गायब होकर बेबसी का रूप ले लिया था। तब तक वह भी अपना नाश्ता खत्म कर चुकी थी।

"पापा ! क्या यह मेरा घर नहीं है ? मुझे यहाँ आने का कोई अधिकार नहीं...?" कॉफी के प्याले को खाली प्लेट में पटककर वह खड़ी होकर जोर से चिल्लाने लगी, तो पापा ने उसे पुचकार कर बिठाया, "बेटा ! यह तुम्हारा घर भी है और इस पर तुम्हारा बराबर का अधिकार भी है; लेकिन यों राहुल और उसके माता-पिता को ब्लैकमेल और तंग करने के लिए यहाँ आना...."

"ब्लैकमेल...!"

"और नहीं तो क्या, तुम्हारे सास-ससुर फोन पर तुम्हें मनाते रहते हैं। मुझसे और तुम्हारी माँ से बार-बार कहते हैं कि हम उनके घर की रौनक को वापस भेज दें। कभी राहुल तुम्हें बच्चों की पढ़ाई के नुक्सान का वास्ता देते हैं, तो कभी पास-पड़ोस में हो रही बदनामी का... निरीह से वे तरह-तरह से मान-मनौव्वल करते रहते हैं; पर तुम हो कि टस से मस नहीं होती। अनु बेटा ! अपने परिवार की दरकन-टूटन से बेखबर तथा बच्चों की पढ़ाई के नुकसान से बेपरवाह होकर रहने के ये गन्दे संस्कार तुमने न जाने कहाँ से पाये हैं ?" पापा की सच्ची-साफ बेबाक बात सुनकर अनुभा के चेहरे पर खीझ और क्षोभ की बूँदें उभर आयी थीं।

"पापा, बहुत अजीब हैं वे लोग। आधुनिक भी बनते हैं और मेरी आधुनिकता से जलते भी हैं। बस, मुझसे यह दोगलापन बर्दाश्त नहीं होता।" वह खिसियाते हुए बोली।

"................."

सुप्रिया अनुभा के झूठे बर्तन लेने आयी, तो अनुभा की अछोर-अनन्त ससुराली आलोचना की उपेक्षा करते हुए पापा कहने लगे, "सुप्रिया बेटा ! तुम भी थोड़ी देर को धूप में

...बच्चों से बचपन छीन लिया

– गौरीशंकर वैश्य 'विनम्र'

पीपल की शीतल छाया-सा, यौवन छीन लिया।
मुक्त फुदकती गौरैया का, आँगन छीन लिया।।
मीठे स्वप्न नहीं, जब से बस्ते का बोझ बढ़ा।
असमय ही कोमल बच्चों से, बचपन छीन लिया।।

दूरदर्शनी मौसम घर में, पूरे वर्ष रहे।
कजली-झूलों वाला रिमझिम सावन छीन लिया।।

ऊँची परछाईं है, लेकिन मुखड़ा धुँधला है।
दन्द-फन्द ने व्यापारी का, दर्पण छीन लिया।।

दूर से शब्दों-सन्देशों की परम्परा आयी।
पत्रों की शैली का, शाश्वत चिन्तन छीन लिया।।

सेवा के नियमों से, जीवन का व्यवहार बँधा।
आदेशों के अनुपालन ने, तन-मन छीन लिया।।

– ११७, आदिलनगर, लखनऊ– २२६०२२ (उ.प्र.)

आकर बैठ लेतीं। सुबह से लगातार काम में जुटी हुई हो।"

"पापा ! मैं सब्जी काट रही थी। सोच रही थी सायना को लेने के लिए जाने से पहले खाना बना दूँ, इसलिए..."

"ला, सब्जी मैं काट देता हूँ।" पापा ने कहा, तो सुप्रिया सब्जी लेकर वहीं आ गयी; पर उसे स्वयं ही काटती रही।

पापा ने फिर कहा, "बेटी ! सारा दिन घर के काम में खटती रहती हो, कभी आराम भी कर लिया करो। तुम्हारी माँ भी कह रही थी कि तुम न अपने खाने का ध्यान रखती हो, न ही आराम का। ऐसे तो सेहत बिगड़ जायेगी तुम्हारी।"

"पापा ! अपने घर का ही तो काम है; फिर माँ और आप दोनों हैं न मेरा ख्याल रखनेवाले...।" नम आँखों में मुस्करा उठी सुप्रिया, पर पापा की आँखें भर आयीं। "और हाँ बेटा, आदित्य वाली फैक्टरी मैंने तुम्हारे और सायना के नाम करवा दी है। अच्छा होगा यदि तुम घर के काम से थोड़ा अवकाश पाकर धीरे-धीरे काम समझकर उसका पूरा नियन्त्रण अपने हाथ में ले लो। तुम मेरी पढ़ी-लिखी समझदार, सुघड़ और हिम्मतवाली बेटी हो। भला-बुरा सोचते हुए अपने भविष्य के बारे में मजबूती से निर्णय लो। मैं और तुम्हारी माँ तो पके फल हैं, न जाने कब टपक जायें। तुम्हारी उम्र की बहुत-सी लड़कियों की तो अब तक शादी भी नहीं हुई होती। एक तुम हो, जो खेलने-खाने की इस उम्र में ईश्वर की मार की मारी सारा दिन हमारी सेवा में जुटी रहती हो। बेटा ! यह सब नियति का..."

"प्लीज पापा !" कहकर सुप्रिया बात का रुख बदलने के लिए आँच धीमी करने के बहाने रसोईघर में चली गयी।

"पापा, सुप्रिया को बेटी-बेटी कहकर यों सिर पर मत चढ़ाओ। आते ही आदित्य भाई को खा गयी। अब अगर सारा कुछ यों उसके नाम कर दोगे, तो वह सब कुछ हथियाकर आपको भिखारी बना देगी और फिर मुझे क्या दोगे पापा ? आदित्य के न रहने के बाद आपके बिजनेस, जमीन-जायदाद पर मेरा अकेली का हक बनता है, मैं आपकी बेटी जो हूँ और वह बहू... पराये घर की बेटी...।" अनुभा ईर्ष्या में भरकर बोली, तो पापा देखते ही रह गये उसे। आखिर कहाँ कमी रह गयी उनकी परवरिश में... शायद उनके अतिरिक्त लाड़-प्यार का ही नतीजा है, जो वह इतनी नकचढ़ी और ईर्ष्यालु है..." तड़प उठे थे वे भीतर ही भीतर। केवल ससुराल वाले ही दहेज के लिए लालायित नहीं रहते। इतना देने-लेने, लड़कों के बराबर और कई बार उनसे बढ़िया परवरिश तथा पढ़ाई-लिखाई के बावजूद लड़कियाँ भी गिद्धनजर रखती हैं माँ-बाप के पैसे-टके पर...। किश्तों में भी चाहती हैं और एकमुश्त भी...।

"अनुभा ! तू तो जानती है कि पढ़ाई के साथ-साथ ही आदित्य ने अपना बिजनेस जमा लिया था। डिग्री तो बहुत

बाद में ली उसने। कितनी ईर्ष्या करते थे मेरे संगी-साथी, 'क्या दूरदर्शी लड़का पाया है जयन्त शर्मा ने। एकदम साफ सोच वाला और दूरद्रष्टा... अपना लक्ष्य निर्धारित करके आगे बढ़नेवाला। व्यवस्थित होने के लिए माँ-बाप को जरा दुःख नहीं दिया।' शायद उसे अपनी जिन्दगी के छोटे होने का अन्दाजा था। उसके आत्मविश्वास, आवाज की मिठास, काम के प्रति प्रतिबद्धता को देख लोग दाँतों तले अँगुली दबाते थे। कुछ ही बरसों में देश-विदेश में अपनी जड़ें बिछा ली थीं उसने.... काम के जुनून में ब्याह तक टालता रहा। फिर ब्याह के तुरन्त बाद ही सुप्रिया को भी लगा लिया था काम में। तुम्हारी माँ कितना डाँटती थीं, नयी-नवेली, फिर गर्भवती बहू को यों काम में लगाये रखने के लिए। उम्र छोटी होने पर भी सुप्रिया गजब की हिम्मत के साथ जुनूनी पति की हर आकांक्षा पर पूरी उतरती हुई न तो घर-गृहस्थी और हमारी उपेक्षा करती और न ही पेट में पल रही अपनी पहलौठी की सन्तान की। जरा-सी उम्र में ही आदित्य व्यापार की दौड़ में मुझ से कहीं आगे निकल गया, फिर भी अपने हर प्रोजेक्ट की मुझसे चर्चा करता, अपनी बात तुम्हारी माँ से बाँटता। जब सुख लेने का मौसम आया, तो खुद ही चला गया। मात्र चौबीस पूरे किये थे तब सुप्रिया ने और चार बरस की सायना। यह फैक्टरी पैसा जायदाद सब आदित्य ने अपनी मेहनत से खड़े किये हैं और उसी के हैं। दुर्घटना में अकाल-मृत्यु हो जाने के कारण वह नहीं रहा, तो यह क्या सुप्रिया का कसूर है। असमय वैधव्य का बोझ ढोती वह फूल-सी बच्ची कैसी कुम्हला गयी है। तुम्हें तो लड़की होने के नाते अपनी छोटी-बहन-सी भाभी से स्नेह, प्रेम तथा सहानुभूति होनी चाहिए, उल्टा यह ईर्ष्या-द्वेष, लालच...! छीः छीः कब सुधरोगी तुम... एक सुप्रिया है, जो अपनी कीमती से कीमती चीज तुम्हें तुरन्त दे देती है। तुम्हारे बच्चों को सायना से बढ़कर प्रेम-स्नेह और ममता देती है। तुम हर प्रकार से सम्पन्न होकर भी....। बेटी, तुम्हें बुरा लगे या भला; लेकिन सुप्रिया बहू हमारे लिए तुमसे बढ़कर है। समाज के नियम रीति-रिवाज निबाहते हुए हमने विवाह-बेदी पर तुम्हें दिया है और भले ही ईश्वर की मर्जी से सही, आदित्य को खोया है और सबके बदले एक सुप्रिया को पाया है। साल से ऊपर हो गया है आदित्य को गये, अपने गम को पीकर अपनी बच्ची के साथ-साथ जिस प्रकार उसने हम बूढ़ा-बूढ़ी को सहारा दिया है, वह काबिले तारीफ है। न जाने सुबह कब जगती है, रात को किस समय सोती है, हमें तो वह काम में जुटी ही दिखती है। कैसे तुम्हारी बीमार माँ की तीमारदारी करती है, कैसे सायना, मुझे और घर को योजनाबद्ध तरीके से सँभालती है, हमारी मानसिक, शारीरिक कमजोरियों, अक्षमताओं, वेदनाओं को झेलती ही नहीं; बल्कि निरन्तर उनका उपचार भी करती है, कैसे अपना दुःख भुलाकर, कष्ट छुपाकर पूरे घर में मुस्कान की सुवास बिखरे रखती है.... मुझे तो वह कोई देवी ही लगती है। उसकी उम्र ही क्या है अभी.... तुमसे कहीं छोटी है... हमारे अनेक बार समझाने पर भी वह दूसरा ब्याह करने को तैयार नहीं; और तो और हमें छोड़कर मायके तक नहीं जाती। तुम्हारी माँ इसीलिए तो उसे 'सिया' कहकर ही पुकारती है।"

"अरे पापा ! आप कुछ नहीं समझते। सब जायदाद का चक्कर है। इसीलिए वह सेवा का ढोंग कर रही है। जिस दिन आपने सब उसके नाम किया नहीं कि वह अपना रंग दिखाने लगेगी।"

"ओह ! वह अगर ऐसा करे, तो भी दुःख नहीं होगा। आखिर वह सब तो है ही उसका और तुम्हारे कथनानुसार वह पराया खून, पराये घर की बेटी है; पर तुम तो मेरा अपना अंश, मेरी और मेरी जीवनसंगिनी की रक्तमज्जा से निर्मित-पोषित-सिञ्चित सन्तान हो। फिर तुम क्यों ऐसी दिल जलानेवाली बातें कर रही हो ? अच्छा है, इस वक्त तुम्हारी माँ यहाँ नहीं है, नहीं तो अपनी बेटी के मुँह से ऐसी जहरबुझी बातें सुनकर उसे दोबारा लकवा मार जाता या हार्ट-अटैक ही हो जाता।" कहना ही चाहते थे वे अपनी एम. एस-सी. पास लाडली जायी से, पर पी कर गये उस कड़वे विषाक्त घूँट को अपने भीतर और अपना सन्तुलन बनाये रखते हुए उसे समझाने लगे, "अनु, आदित्य वाली फैक्टरी में सुप्रिया पहले से ही पचास प्रतिशत की हिस्सेदार थी और अब कानूनन पूरे की उसे होना ही था; परन्तु उसने तो कभी किसी चीज की तरफ आँख उठाकर नहीं देखा। बस, हरदम यही कहती है, "अगर आप और माँ को कोई भी कष्ट हुआ, तो आदित्य की आत्मा को दुःख होगा। पापा, सात फेरे लेकर कसम खायी थी हमने कि एक-दूसरे की भावनाओं-इच्छाओं का ख्याल करेंगे, उन्हें पूरा करने में एक-दूसरे का अन्त तक साथ देंगे। वे नहीं रहे तो क्या, उनकी जिम्मेदारियाँ अब मेरी हैं। फिर आप बड़ों से जो सद्गुण, जीवन-मूल्य और संस्कार हमारी सायना को मिल रहे हैं, क्या वे और कहीं मिल सकते हैं !"

"तुम तो जानती हो कि दुर्घटना में आदित्य की मौत की खबर सुनते ही तुम्हारी माँ को अचानक पक्षाघात का अटैक हो गया था। उस वक्त मुझे भी होश कहाँ था ! यह तो वही थी, जो इतने बड़े सदमे को मन में दबाकर उसे झट से गाड़ी में डालकर अस्पताल ले गयी थी। आदित्य के संस्कार के वक्त भी तुम्हारी माँ आई.सी.यू. में थी। बाद में तो कुछ दिन को तुम सब लोगों का सहारा मिल गया था; पर उस वक्त तो तुरन्त मिली उचित डॉक्टरी सहायता तथा उसके बाद हुई सेवा के कारण ही आज तुम्हारी माँ अपाहिज नहीं है। कौन लड़की होगी, जो अपने ऊपर टूटे पहाड़ से दुःख को सँजोकर अपनी सास के लिए इतना करेगी। लोग देवी और किसको कहते होंगे, मैं नहीं जानता और न ही जानने की इच्छा है; क्योंकि सुप्रिया से बढ़कर कोई...। धन्य हैं उसके माता-पिता, जिन्होंने आज के इस युग में ऐसी सन्तान को जन्म दिया, ऐसे संस्कार दिये और भाग्यशाली हैं हम,

जो यह कोहिनूर हमारे हाथ लगा। इसके होने के सुख ने आदित्य के न होने के हमारे दुःख को भुला दिया है बेटा।" छलक उठे थे पापा।

"बचपन में जब हिन्दी-अध्यापक लड़की और बेटी में अन्तर पूछते थे, तो मुझ अनुत्तरित को हमेशा बेंच पर खड़े होने की सजा भुगतनी पड़ती थी। वह अन्तर अब समझ में आया है। अब पूछे कोई मुझसे बेटी की परिभाषा– स्वार्थ से परे भावों और भावनाओं से भरा वह जीव, गुणों के आधार पर जिसका स्थान सगी माँ से भी ऊपर हो सकता है। तभी तो हमारी फैक्टरी के मैनेजर निलय बैनर्जी अपनी बहू को 'बौड़ो-माँ' कहकर पुकारते हैं।"

"बौड़ो-माँ"

"यानी बड़ी माँ।" "किसी पूजा-उत्सव के अवसर पर मैं उनके घर गया था, तो ओठों पर मुस्कराहट लिये, कहे-अनकहे, इधर-उधर दौड़-भागकर काम करती एक शालीन विवाहिता को वे 'बौड़ो-माँ" कहकर पुकार रहे थे। यह जानते हुए कि उनकी पत्नी नहीं है, दो बेटे और एक बेटी है और सम्भवतः वह उनकी बहू ही होगी, तुम्हारी तरह मैंने 'बौड़ो-माँ' सम्बोधन पर जिज्ञासा दर्शायी, तब उन्होंने बताया कि है तो वह उनकी बड़ी बहू; परन्तु असल में माँ से बहुत बड़ी है। मुझे चकित देख उन्होंने खुलासा किया कि माँ का अस्तित्व और कर्त्तव्य तो महज बच्चों तक सीमित होता है; पर हमारी इस 'बौड़ो-माँ" नाम की मधुर-मिष्ठ धुरी के आस-पास घर-द्वार, पति, सास-ससुर, ननद-देवर, बच्चे, अतिथि और न जाने कितने कहे-अनकहे रिश्ते-नाते तथा लोगों का जीवन-स्वास्थ्य घूमता है।' बेटा, सुप्रिया को व्यावहारिकता और यथार्थ की कसौटी पर कसने लगता हूँ, तो 'बौड़ो-माँ' की इस आधी-अधूरी, स्पष्ट-अस्पष्ट सीमित-सी परिभाषा पर खरा उतरने के बाद इसे पीछे छोड़ कहीं आगे निकल जाती है वह। इस सुखद अनुभव के बाद किसी अपने-पराये से अच्छा-बुरा समझकर अपनी विचारधारा को बदलने की गुञ्जाइश ही नहीं रह जाती। काश ! तुम उसके सद्गुणों का, प्रेमिल-स्नेहिल व्यक्तित्व का कुछ अंश ग्रहण करके अपने ससुरालवालों के साथ मिल-जुलकर रहतीं, तो तुम भी उनके दिलों पर राज करतीं।" कहते-कहते पापा उठकर उसकी कुर्सी के पीछे आ गये। भर्राई आवाज के साथ पापा के काँपते नम हाथों का नर्म स्नेहिल स्पर्श उसके सिर-माथे, बालों से फिसलता हुआ उसके कन्धों पर आकर ठहर गया।

अनुभा की आँखों की राह कुछ बह रहा था। शायद बरसों से भीतर जमी स्वार्थपरता की परत पिघल रही थी।

□

– मकान नं.– ३४८, सेक्टर– १४,
फरीदाबाद– १२१००२

कहानी

माँ विद्यावती

— सावित्री देवी चौरसिया

सारे घर में बहुत ही चहल-पहल थी। आनेवाले लोगों का ताँता लगा हुआ था। लगता था, जैसे पूरा अमृतसर ही अरोड़ा खानदान के इस आलीशान बँगले के इर्द-गिर्द जमा हो गया है। बाहर जो पण्डाल लगाया गया था, उसमें तिल रखने की जगह नहीं थी। यही हालत घर के अन्दर थी। बँगले के बड़े से आँगन में पण्डित जी धार्मिक रस्में पूरी कर रहे थे। चारों भाई सिर को रूमाल से ढँक बड़े आदर भाव से वही कर रहे थे, जो पण्डित जी कहते थे। लगभग इतनी ही भीड़ दस दिन पहले तब भी जमा हुई थी, जब इन चारों भाइयों की माँ विद्यावती का स्वर्गवास हुआ था। चारों बहुएँ जिस तरह पछाड़ खा-खा कर बार-बार बेहोश हो रही थीं और बेटे शोक में डूबे थे, उससे सारा माहौल गमगीन और भाव-विह्वल हो उठा था। सभी विद्यावती के भाग्य की सराहना करते नहीं थकते थे।

"विद्यावती..."— देसराज के मानस पटल पर अब भी वह घटना उसी तरह जीवन्त है जैसे कल ही की बात हो। पिछले पचास बरस से वह विद्यावती को जानते हैं। सत्तर बरस की इस बूढ़ी आयु में उनकी आँखों की दृष्टि बेशक कमजोर हो गयी हो; परन्तु अतीत की पोटली में गाँठ बाँधकर रखी स्मृतियाँ खोलने पर एकदम से उन्हें स्पष्ट नजर आती हैं। उनकी मानसिक दृष्टि अब भी उतनी ही प्रखर और स्पष्ट है, जितनी बीस बरस की आयु में थी। लाहौर के उस शानदार मकान में जब लाला हरदयाल विद्यावती को ब्याह कर लाये थे, तब देसराज उनके ही मकान में किरायेदार थे। लाहौर में उनके ही सामने विद्यावती ने अपने चारों पुत्रों को जन्म दिया था। चारों पुत्र उनकी गोद में खेले थे। लाला हरदयाल की गिनती लाहौर के सम्पन्न व्यापारियों में होती थी। देसराज को वे अपने छोटे भाई की तरह ही मानते थे और पूरे घर में उन्हें किरायेदार न समझकर एक पारिवारिक सदस्य की तरह समझा जाता था। चारों लड़के अभी भी उन्हें सम्मान से 'चाचा जी' कहकर बुलाते हैं; लेकिन इसमें अब आत्मीयता कम है और औपचारिकता ज्यादा। वे जानते हैं, यह थोड़ी बहुत आत्मीयता भी विद्यावती के कारण ही थी। अब जब वह भी नहीं रही, तो...। आँखों की कोर में छलक आये आँसू को उन्होंने अपने कुरते से पोंछ लिया।

विद्यावती को वे 'भाभी' कहते थे और विद्यावती भी उन्हें छोटे देवर का सम्मान देती। हालाँकि पिछले दस बरस से स्थिति बद से बदतर होती चली गयी थी, जब चारों भाइयों ने व्यापार और सम्पत्ति का बँटवारा कर लिया। देसराज सबसे बड़े लड़के की तेल मिल का काम देखते थे, फिर भी बाकी तीनों के यहाँ भी उनका आना-जाना लगा ही रहता था। व्यापार और सम्पत्ति का बँटवारा जब चारों भाइयों के बीच हुआ था, तभी विद्यावती के वजूद को भी चारों लड़कों ने बाँट दिया था। तय हुआ था कि माँ विद्यावती चारों बेटों के पास एक-एक माह रहेंगी। चारों ही बेटे सम्पन्न थे और विद्यावती उनके लिए कोई आर्थिक बोझ नहीं थीं; लेकिन उनके बूढ़े जर्जर शरीर की उपस्थिति चारों भाइयों के बीबी-बच्चों को ज्यादा खटकती थी। यही कारण था कि वे सभी उस दिन का इन्तजार करते, जब विद्यावती के उनके यहाँ रहने का महीना पूरा होता।

फरवरी के महीने में जब एक बार दूसरे नम्बर का बेटा विद्यावती को अपने भाई के घर छोड़ने अट्ठाइस दिनों बाद ही पहुँच गया, तो भाई की बड़ी बेटी ने ताना मार ही दिया था— "चाचाजी, हर साल फरवरी को दादी जी आपके हिस्से में आती हैं और आप एक दिन भी इन्तजार नहीं करते। २८ की रात ही धमक पड़ते हो।" विद्यावती ने सुना, तो बोल पड़ी— "तू ऐसा कर मुन्नी, तीन दिनों के लिए मुझे फुटपाथ या किसी मन्दिर को सामने छोड़ आ। तीन दिन मैं वहाँ रह लूँगी। मेरे लिए कोई नयी बात नहीं है। बँटवारे के पश्चात् जब यहाँ अमृतसर आयी थी, तो महीनों मैंने ऐसे ही गुजारे
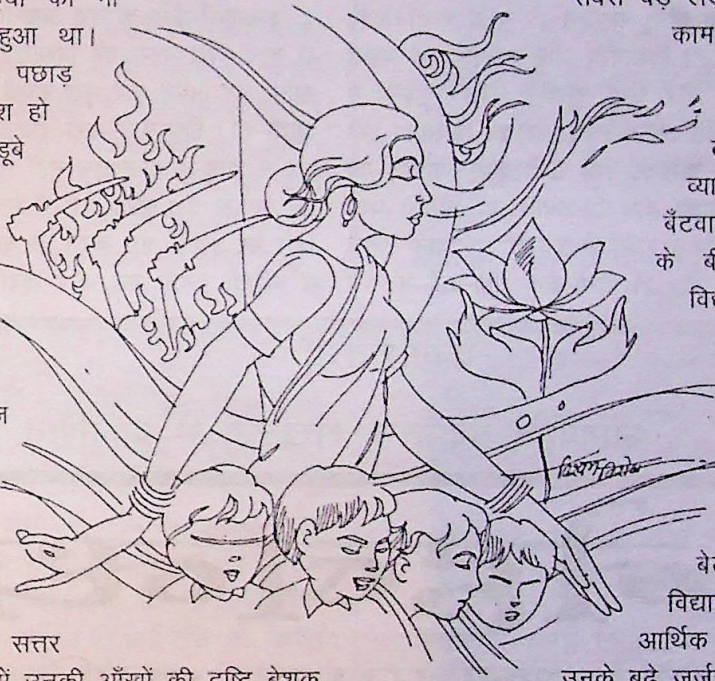
थे अपने चार-चार बच्चों के साथ। खुद भूखी रही हूँ, लेकिन अपने बच्चों को भूखा नहीं रहने दिया, चाहे उनके लिए भीख ही क्यों न माँगनी पड़ी हो।"

"सच ही तो कहती थी विद्यावती", देसराज ने सोचा। भारत-पाक के विभाजन की रक्तरञ्जित अमानवीय घटनाओं को इतिहास और कथाओं में पढ़ने मात्र से ही जब इस नयी पीढ़ी के रोंगटे खड़े हो जाते हैं, तो उन्होंने और विद्यावती ने तो उस पूरे भीषण हत्याकाण्ड को अपनी आँखों से मात्र देखा ही नहीं था; वरन् उस त्रासदी को खुद झेला भी था। विद्यावती की आँखों के सामने ही दंगाइयों ने लाला हरदयाल की गर्दन एक झटके में उनके धड़ से अलग कर दी थी और उनके सिर को बर्छे की नोक से बींधकर पूरे मुहल्ले में घुमाते हुए हिन्दुओं के खिलाफ नारेबाजी की थी। लाला हरदयाल का कसूर मात्र इतना था कि वे कट्टर आर्य समाजी थे और धार्मिक हिन्दू संगठन के मुख्य कर्त्ता-धर्त्ता। तब एक मुसलमान ने ही विद्यावती और उसके चारों बच्चों की जान बचायी थी और उन्हें सुरक्षित उस मुहल्ले से निकाला था। अपने पति लाला हरदयाल का सिरकटा धड़ और उनकी मेहनत से कमायी गयी सारी पूँजी, सम्पत्ति को वहीं छोड़ बिल्कुल खाली हाथ विद्यावती को भागना पड़ा था। तब उस पूँजी और सम्पत्ति से ज्यादा मूल्यवान् उनके लिए अपने चारों बच्चे थे। २१ दिनों तक यहाँ-वहाँ भटकने के पश्चात् अमृतसर के सरकारी कैम्प में आ गयी थीं। महीनों तक पुनर्वास हेतु शरणार्थियों को कोई सरकारी मदद नहीं मिली थी। लाखों की संख्या में पण्डालों में शरणार्थी भरे पड़े थे। भुखमरी और अमानवीयता का नंगा सच विद्यावती ने देखा था। जब खाने के लिए दो सूखी रोटी और एक कटोरी चावल बाँटने सरकारी गाड़ी आती थी, तो उसे पाने के लिए भीड़ हिंसक हो उठती थी और औरतों-बच्चों को पुरुष रौंद दिया करते थे। समाजसेवी संगठनों के वालण्टियर एक वक्त की रोटी मुहैया कराने के लिए कम उम्र की लड़कियों और औरतों का शारीरिक शोषण कर रहे थे और सभी चुपचाप देख रहे थे। मानवता और नैतिकता का इतना पतन हो चुका था कि भूख के आगे पस्त माता-पिता खुद अपनी बेटियों की बोली चन्द रुपयों में लगाने लगे थे।

शरणार्थी-कैम्प के उस अमानवीय और अनैतिक वातावरण से मात्र तीस बरस की विद्यावती बिल्कुल खाली हाथ और खाली पेट अपने चार भूखे बच्चों को सीने से लगाये निकल आयी थी। जिसने नौकरों-चाकरों के रहते कभी खुद अपने घर में झाड़ू-चौका-बरतन नहीं किया था, उसने अपने बच्चों की खातिर दस-बारह घरों में सफाई और झूठे बरतन धोये। दिन भर इतना श्रम करने के बाद वह रात में पापड़ बेलने व बडियाँ बनाने का काम करती, ताकि उसके बच्चों को

कोई अभाव न रहे। दोनों बड़े बच्चे लाहौर में बहुत अच्छे स्कूलों में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। विद्यावती ने प्रयास करके उन्हें अच्छे 'ईसाई मिशनरी स्कूल' में दाखिल करवाया, जहाँ उनकी फीस माफ थी। एक गरीब और युवा औरत पर समाज के भेड़िये तीखी नजर रखते हैं कि कब मौका मिले और वह उस पर झपट पड़ें; लेकिन विद्यावती ने उन्हें इसका अवसर कभी नहीं दिया। अनेक प्रलोभनों को ठुकराते हुए उसने अपना सारा जीवन अपने बच्चों के ऊपर न्योछावर कर दिया था। यह विद्यावती के दिए हुए संस्कार ही थे कि उनके चारों बेटे बहुत ही मेहनती निकले। घर में आर्य समाजी माहौल था और विद्यावती को हमेशा इस बात का गर्व रहा कि बिन बाप के बच्चों को उसने माँ का वात्सल्य ही नहीं, बाप का अनुशासन भी सिखाया। यही कारण था कि उनके चारों बेटों में से किसी ने कभी मांस, मदिरा और सिगरेट को हाथ नहीं लगाया।

पढ़ने के साथ-साथ बड़े बेटे को उसने जिस घर में वह काम करती थी, उनकी तेल मिल में हिसाब-किताब देखने में लगवा दिया। शाम को दो घण्टे के लिए वह जाता और तेल मिल के दिन भर के सौदों का लेखा-बही बना आता। इससे उसे कुछ रुपये मिल जाते। तेल मिल का सारा हिसाब-किताब करते हुए उसे इस व्यापार का अच्छा ज्ञान हो चला था। कहाँ से सस्ते कच्चे माल को लेना है और उनकी पैकिंग करके कितने मुनाफे में कहाँ की मार्केट में खपाना है, इसकी उसे अच्छी जानकारी हो चली थी।

इस व्यापार की शुरुआत बड़े बेटे ने ही की थी। अपने जीवन की सारी जोड़ी गयी पूँजी और अपने मालिकों से उधार रकम लेकर उसने एक छोटी-सी खोली में तेल निकालने की मशीन, जो हाथ से चलानी पड़ती थी, बेटे को लेकर दी थी। खोली के आगे ही काउण्टर लगाकर बेटा ताजा निकाला हुआ सरसों, तिल, मूँगफली का तेल खुदरा दर पर बेचता। बाद में दूसरे नम्बर का बेटा भी इसी दुकान से जुड़ गया। बारी-बारी से दोनों भाई हाथ से मशीन चलाकर तेल निकालते। कहते हैं, मेहनत और लगन से काम करनेवालों के साथ भगवान् होता है। बस यही हुआ... अगले पाँच वर्षों में उन्होंने बिजली से चलनेवाली मशीन ले ली। उत्पादन बढ़ा, तो खपत करने का बाजार भी बढ़ा। ईमानदारी से शुद्ध, विना मिलावट के माल की वजह से ग्राहकों और दुकानदारों में उनकी साख भी बढ़ी। अगले दस वर्षों में चारों भाई इसी व्यापार से नाम और पैसा कमाकर अमृतसर के सम्पन्न व्यापारियों में गिने जाने लगे। दो अलग-अलग इलाकों में उनकी तेल मिलें, फ्लोर मिलें और पापड़ व बडियाँ बनाने का उद्योग स्थापित हो चुका था। उनका 'ब्राण्ड' अब पूरे देश की मार्केट में फैल चुका था। एक तरफ परिवार की सम्पन्नता बढ़ रही थी, वहीं दूसरी तरफ आत्मीयता घट रही थी। जैसे-जैसे चारों भाइयों के विवाह हुए और घर में बहुएँ आयीं, इस सम्पन्नता को अकेले स्वतन्त्र रूप से भोगने की प्रवृत्ति भी बढ़ गयी। सबसे छोटे बेटे के विवाह तक चारों भाई और उनका परिवार इकट्ठे इसी बँगले में रहते थे। बँटवारे का बिगुल सबसे पहले छोटी बहू ने ही बजाया था। शादी के दो माह बाद ही उसने कह दिया था, इस चिड़िया घर में मैं नहीं रह सकती, जहाँ दस लोग हमेशा एक-दूसरे की गतिविधियों पर नजर रखते हों

गगन गूँजता चीत्कार से...

— 'भुजंग' राधेश्याम सेन

मूक-बधिर बन सहती जनता
भारी अत्याचार;
मौज मनाती दहशतगर्दी
करती मारामार।

फूट रहे बम बाजारों में
गली-गली में गोली,
गगन गूँजता चीत्कार से
मरती जनता भोली;
मनते यों दहशत में उत्सव
अब सारे त्योहार।

वे संसद् के परिसर में भी
घुस बन्दूक चलाते,
और अदालत के दरवाजे
जाकर धूम मचाते;
आतंकी नित करते साजिश
नयी-नयी तैयार।

सोच-सोच कर सूखे अफसर
अब दिन-रात बिचारे,
फिरें देश में खाक छानते
वीर सिपाही न्यारे;
घुसे कहाँ से छिपे कहाँ हैं
आतंकी इस बार।

लगती अब यों लाइलाज-सी
आतंकी बीमारी,
जिसके ऊपर राजनीति का
राजरोग है भारी;
भारी भरकम महारोग का
हो कैसे उपचार !

मंगली पेठ, सिवनी– ४८०६६१ (म.प्र.)

और हमेशा घर की बहुएँ सिर पर पल्ला या चुनरी लपेटे सकुचाई-सी छिपती फिरती हों।

और घर, व्यापार का बँटवारा हो गया था। इतने ही बड़े तीन बँगले अलग-अलग इलाकों में खरीदे गये थे। माँ विद्यावती किसके साथ रहेंगी, इस पर बड़ी हुज्जत हुई थी। "मेरे लिए तो मेरे चारों बेटे एक समान हैं। जिसके साथ जब तक मेरा दिल करेगा, जितने दिन रहना होगा रह लूँगी, जब जिससे मिलने का दिल करेगा, उसके पास चली जाऊँगी"– विद्यावती ने कहा था।

"आप केवल अपने ही दिल की तो मत सोचो। जहाँ आप रहेंगी, उन्हें भी तो आपके लिए उसी तरह से एडजस्ट करना पड़ेगा घर में। बच्चों की पढ़ाई है, उनके ढेरों काम होते हैं... फिर आपके आने से आपकी जिम्मेदारी भी तो उठानी होगी। आपकी दिनचर्या अलग है हमारी अलग। उसी के अनुसार ही तो एडजस्ट करना होगा। अब ये थोड़ी है कि एक के पास आपका दिल लग गया, तो उसी के पास महीनों पड़े रहे।" तीसरे नम्बर की बहू को लगा कि उन्हें उसके बच्चों से काफी लगाव है और कहीं बच्चों की वजह से विद्यावती उसके यहाँ ही डेरा न डाल लें।

सुनकर विद्यावती को गहरा धक्का लगा। अभी तक किसी बहू ने उनसे बदजबानी नहीं की थी; लेकिन उनके मन में इतना जहर भरा है, इसका अनुमान विद्यावती को न था। सबसे छोटी नयी बहू के मुँह खोलने से सभी के मुँह खुल गये थे और अन्दर का जहर शब्दों के जरिये मुखर हो उठा था।

देश के विभाजन के बाद जब विद्यावती अमृतसर पहुँची थीं, तब देसराज उनके साथ नहीं थे; क्योंकि वे बजाय अमृतसर जाने के लुधियाना कपड़े की मिल में मजदूरी करने लगे थे। दोबारा जब वे विद्यावती से मिले, तो लम्बे सात-आठ बरस बीच में गुजर गये थे। एक बार किसी काम से वह अमृतसर गये थे, बड़े बेटे ने उन्हें सड़क पर पहचान लिया था। उसके बाद इस परिवार की गरीबी से सम्पन्नता तक की यात्रा को उन्होंने बड़े करीब से देखा था। जब उनकी कपड़ा मिल बन्द हुई, तो उनका रोजगार छूट गया। देसराज बड़े बेटे के साथ तब व्यापार से जुड़े, जब उसे खाली हाथ से चलानेवाली मशीन से तेल निकाला जाता था। देसराज की मेहनत और उनका अनुभव व मार्गदर्शन व्यापार में बहुत काम आया था, इसे बड़ा बेटा और विद्यावती हमेशा मानते थे। इसी कारण उनका परिवार में पूरा सम्मान होता।

पण्डित जी द्वारा धार्मिक रस्में पूरी कराये जाने के पश्चात् दोपहर के भोजन का प्रबन्ध था। भोजन में तरह-तरह के व्यञ्जन बनाये गये थे। जिसने भी खाया, उसने जी भर कर तारीफ की। सभी जी भर के विद्यावती की मृत्यु के बाद उनकी आत्मा की शान्ति के लिए आयोजित इस समारोह की प्रशंसा कर रहे थे। उनका मानना था कि पुत्रों द्वारा इस प्रकार उनके सम्मान में आयोजित भव्य समारोह से विद्यावती की आत्मा जरूर प्रसन्न हो रही होगी। शहर के जाने-माने नेता, उद्योगपति सभी इस समारोह में आये थे। सभी मुक्त भाव से विद्यावती की किस्मत की सराहना कर रहे थे, जिन्होंने ऐसे बेटों को जन्म दिया।

देसराज सुबह से ही इस आयोजन में भाग-दौड़ कर रहे थे; लेकिन कहीं न कहीं एक टीस उनके अन्तर्मन को बार-बार कचोट रही थी। लोग जब विद्यावती के पुत्रों की अपनी माँ के प्रति प्रेम की प्रशंसा करते, तो उन्हें लगता कि वे जोर-जोर से चीखें और सभी मेहमानों को उनके बहू-बेटों की असलियत बता दें। उनका मन हुआ कि वे सभी मेहमानों से चीख-चीख कर कहें कि यह आयोजन अपनी माँ की आत्मा की शान्ति के लिए इन कपूतों ने आयोजित नहीं किया है; बल्कि अपनी सम्पन्नता और साख का प्रदर्शन करने के साथ-साथ इसमें माँ की मृत्यु की खुशी भी शामिल है, जिसकी घर में उपस्थिति इन्हें बोझ महसूस होती थी... लेकिन वे चुप रहे।

मन ही मन उन्होंने एक निर्णय ले लिया। उन्हें नहीं पता था कि वे कहाँ जायेंगे; परन्तु इतना निश्चय वे कर चुके थे कि यहाँ नहीं रहेंगे। □

– सुभाष वार्ड,
मण्डला– ४८१६६१ (म.प्र.)

कहानी

अभिशप्त त्याग

– सुनीता तिवारी
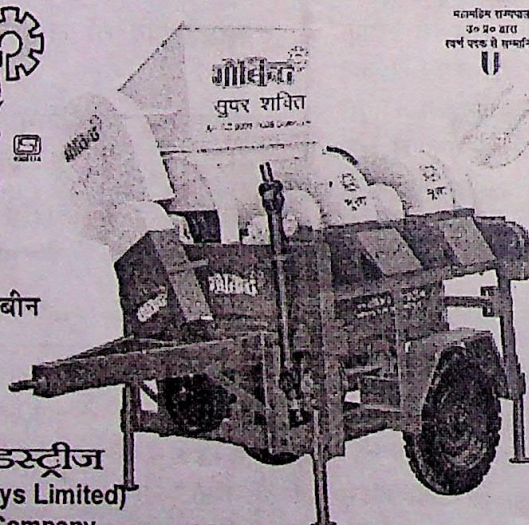
सुशीला की शादी सकुशल सम्पन्न हो गयी। प्रिंसिपल शालिनी को बड़ी राहत मिली। बहुत बड़ा संकल्प पूरा हुआ। परिवार की जिम्मेदारियों से मुक्त हुई। रही बात विनोद की, अनुकम्पा आधार पर पिताजी के कार्यालय में नौकरी मिल ही गयी है। बस, कोई सांस्कारिक कन्या मिल जाये, इसका भी घर बस जाये। वैसे विनोद ने बहुत निराश किया। बड़ी मुश्किल से इण्टर पास कर सका। कड़ाई करती, तो माता जी रोने-बिलखने लगतीं। कहतीं, "बेटी ! कोई किसी का भाग्य नहीं बदल सकता। अधिक दबाव डालने पर घर की शान्ति ही भंग होगी। बीवी-बच्चे हो जायेंगे, तो अपने आप सुधर जायेगा।"

सुशीला के विना घर सूना-सूना लगता। अजीब-सा अकेलापन महसूस होता। अकेलापन तो माताजी की मृत्यु के बाद से ही महसूस होने लगा था; किन्तु सुशीला फिर भी कुछ सहारा थी। माताजी रश्मि और वीणा की शादी में थीं; कितनी निश्चिन्तता थी; किन्तु सुशीला का हाथ पीला करने को नहीं रहीं। किंकर्त्तव्यविमूढ़ता की-सी स्थिति रही, फिर भी विद्यालय के स्टाफ तथा पड़ोसियों के सहयोग से सब निपट गया।

विद्यालय के कार्य में व्यस्तता के कारण शालिनी घर के कामकाज के लिए समय न दे पातीं। उन्होंने अपने विद्यालय की एक विधवा चपरासी मुन्नी को रख लिया। मुन्नी दिन भर विद्यालय में रहती। शाम को प्रिन्सिपल साहब के घर आ जाती। रसोई सँभालती, खाती-खिलाती और वहीं सो जाती। सवेरे फिर स्कूल। प्रिन्सिपल को बड़ा सकून मिलता।

सुशीला की शादी में शालिनी को अपनी हैसियत से कुछ अधिक खर्च करना पड़ा, फिर भी प्रसन्न थी कि बहन को भरा-पूरा घर मिला; लेकिन व्यक्तिगत तौर पर समाज के इन मुखौटाधारियों के प्रति शालिनी की वितृष्णा बढ़ती गयी, जिनके हाथी के जैसे खाने के अलग और दिखाने के अलग दाँत थे। इसके पहले दोनों बहनों के ससुराल वाले भी कम न थे, उनको भी सन्तुष्ट करना पड़ा था, ताकि बहनों को ससुराल में कोई कष्ट या ताना सुनने को न मिले।

शालिनी के पिता सिंचाई विभाग में बड़े बाबू थे। अपनी ईमानदारी और स्पष्टवादिता के कारण इतने हरे-भरे विभाग में रहते हुए भी सदैव सूखे में रहे। गाँव के अपने हिस्से का खेत बेचकर और विभाग से कुछ रुपया कर्ज लेकर मुश्किल से अब तक तीन कमरे का एक मकान खड़ा कर पाये थे। वे भी क्या करते ? चार बेटियाँ, एक बेटा और स्वयं तथा पत्नी की सात सदस्यीय फौज के राशन-पानी, कपड़े, लत्ते, दर-दवाइयों, पढ़ाई-लिखाई में ही सारा वेतन चुक जाता था; लेकिन खुश थे। बड़ी लड़की शालिनी ने प्रथम श्रेणी में एम. एस-सी. किया और प्रथम बार में ही नायब तहसीलदारी में उसका चयन हो गया। तहसील मंसूरनगर में पोस्टिंग भी हो गयी। वैसे उसके बाद भी वह पी. सी.एस. की तैयारी कर रही थी।

सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा था। सावन-भादों का महीना, एक दिन शाम को आफिस से घर आते हुए रामशरण भीग गये। घर आकर कपड़े बदले, तबियत ढीली लगी। विना खाये-पिये ही लेट गये। रात में भीषण ज्वर, किसी को बताया नहीं। सबेरे पत्नी ने उनकी हालत देखी, तो घबरा गयी। डाक्टर को दिखाने को कहा, तो कहने लगे, सर्दी-जुकाम का बुखार है, ठीक हो जायेगा। तुलसी, काली मिर्च का काढ़ा पिलाओ। बुखार दूसरे दिन भी न उतरा। तीसरे दिन हालत गम्भीर हो गयी। अस्पताल में भर्ती कराया गया। डाक्टरों ने डेंगू बताया। प्लेटलेट्स बहुत गिर गया था। उपचार के दौरान ही चल बसे।

इस अचम्भित कर देनेवाली घटना की तो किसी को उम्मीद ही न थी। परिवार में कोहराम मच गया। शालिनी को फोन हुआ, दोपहर होते-होते वह आ गयी। उनका शरीर तो अग्नि को समर्पित हो पञ्चतत्त्व में विलीन हो गया; किन्तु परिवार की शोकाग्नि बुझने का नाम ही नहीं ले रही थी।

पिता के प्रॉविडेण्ट फण्ड का नाममात्र का पैसा मिला; क्योंकि अधिकांश तो गृह-निर्माण के लिए, लिये गये ऋण में समायोजित हो गया, हाँ; पेंशन माता जी को अवश्य मिलने
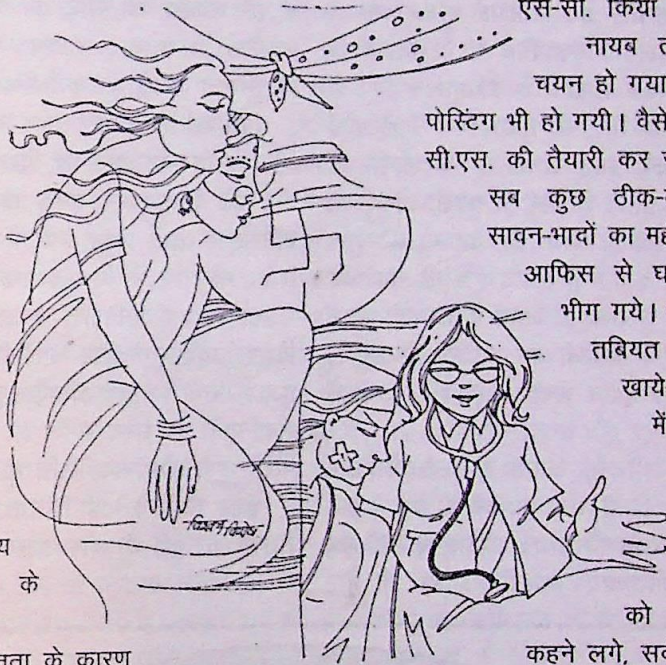
लगी; किन्तु इससे घर का खर्च पूरा न पड़ता। माँ, पिताजी की असामयिक मृत्यु का आघात न झेल पायीं और प्रायः बीमार रहतीं। तीन-तीन कुँवारी बहनें और छोटा भाई। घर अस्त-व्यस्त हो रहा था। विवश होकर शालिनी ने नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया; क्योंकि बाहर नौकरी करते हुए घर की देख-रेख न कर पाती।

घर आकर शालिनी ने परिवार सँभाला और साथ ही पड़ोस के एक हाईस्कूल में गणित की अध्यापिका के रूप में कार्य करने लगी। शालिनी ने बी.एड. किया और शीघ्र ही विद्यालय में स्थायी हो गयी। वह बड़े मनोयोग से अध्यापन कार्य करती। विद्यालय को जब इण्टरमीडिएट तक की मान्यता मिल गयी, तो वह इण्टर के विद्यार्थियों को भी गणित पढ़ाती।

शालिनी की विवाह की आयु निकलती चली जा रही थी। पास-पड़ोस में भी खुसुर-पुसुर होने लगी कि सयानी लड़की कब तक घर में बैठाये रहेगी ? इन बातों को सुनकर माँ के मन में भी व्यग्रता बढ़ने लगी। एक दिन माँ ने विवाह के विषय में बात की और अपने सम्बन्धियों के कुछ लड़कों के नाम भी लिये। यह भी कहा कि यदि तुम्हारे मन में ही कोई लड़का हो, तो शादी कर लो। आसपास के लोगों का उलाहना अब नहीं सुना जाता। शालिनी ने पहली नौकरी से त्यागपत्र देते समय जो संकल्प लिया था, वह माँ को सुना दिया। माँ अवाक् ! उसने कहा, "माँ ! यदि एक की तपश्चर्या से पूरे परिवार का जीवन सुखमय हो जाता है, तो वही उत्तम है। मैं शादी नहीं करूँगी। पिताजी का दायित्व सँभालूँगी। आप मेरे संकल्प को बल प्रदान करती रहिए। लोग अपने आप शान्त हो जायेंगे।"

शालिनी प्रतिभाशाली थी ही, स्थायी होने के पाँच वर्ष बीतते-न-बीतते माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग से प्रधानाचार्य के पद के लिए उसका चयन हो गया। संयोग से उसी वर्ष उसके विद्यालय के प्रधानाचार्य सेवा-निवृत्त हो रहे थे। शालिनी के अनुरोध पर उसे उसी विद्यालय में नियुक्ति मिल गयी। अब शालिनी को त्रिकोणीय संघर्ष झेलना पड़ रहा था, विद्यालय के कार्य का पूरा दायित्व, परिवार की देखभाल के साथ बहनों की शादी तथा कुँवारी होने के अभिशाप स्वरूप लोगों के व्यंग्य-बाणों का तीखा प्रहार। विशेषकर सामाजिक आयोजनों और कार्यक्रमों में अपने आकर्षक व्यक्तित्व व सिन्दूरविहीन माँग के कारण वह मनचले लोगों की टिप्पणियों का केन्द्र होती; किन्तु वही लोग जब वस्तुस्थिति से अवगत होते, तो दाँतों तले अँगुली दबाते।

विद्यालय के प्रशासनिक कार्य के साथ ही अध्यापन से थकी-हारी शालिनी प्रायः रात में बिस्तर पर पढ़ते-पढ़ते ही सो जाती। माँ, कमरे में आकर किताबें हटाकर मेज पर रखती और ओढ़न ओढ़ाकर चली जाती। सोते-सोते जब कभी स्वप्न देखती, तो उसमें भी विद्यालय की व्यस्तता। कभी-कभी नैसर्गिक जैविक दमित इच्छाएँ भी बलवती हो उठतीं। स्वप्न में ही संकल्प की याद आ जाती और जग जाती। मन उद्वेलित हो उठता। संकल्प पर पुनर्विचार का भाव आता; किन्तु प्रातः उठने पर कर्त्तव्य-भार के तले सब दब जाता।

प्रिंसिपल का पदभार ग्रहण करते ही शालिनी ने अनुशासन और अध्ययन-अध्यापन पर विशेष बल दिया। परिणामस्वरूप बोर्ड की परीक्षाओं में उनके विद्यालय से सत्तर से पचहत्तर प्रतिशत विद्यार्थी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने लगे। राज्य के शिक्षा मानचित्र में विद्यालय का नाम आ गया। यही क्रम चलता रहा। सेवा-निवृत्ति के तीन वर्ष पूर्व शिक्षा के क्षेत्र में विशेष योगदान के लिए शालिनी को राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त हुआ। सभी महत्त्वाकांक्षाएँ पूरी हुईं; किन्तु जैसे-जैसे सेवानिवृत्ति का समय समीप आ रहा था, एक अन्तर्वेदना टीस मारने लगी थी- सेवानिवृत्ति के पश्चात् का जीवन ?

इधर शालिनी भाई विनोद के लिए सांस्कारिक बहू की तलाश कर रहीं थी और उधर भाई अपने स्वभाव के अनुरूप

(शेष पृष्ठ ५० पर)

सुरक्षाबलों का मनोबल न तोड़ें

– डॉ. महाराजकृष्ण भरत

जब देश पर कोई खतरा मँडराने लगता है या फिर हमारे देश की आन्तरिक सुरक्षा क्षत-विक्षत होती है, तो सत्तासीन नेताओं के पास सिवाय इसके कोई भी विकल्प शेष नहीं रहता कि वे सुरक्षाबलों को बाह्य सुरक्षा के साथ-साथ आन्तरिक सुरक्षा को बनाये रखने की भी जिम्मेदारी दें। यह विडम्बना ही है कि आन्तरिक असुरक्षा की भयावह स्थिति से निबटने के लिए सरहदों की सेनाएँ गली-कूचों में गश्त लगा रही हैं। यह एक गम्भीर एवं ज्वलन्त प्रश्न है कि जब हमारा देश आन्तरिक रूप से सुरक्षित नहीं होगा, तो हम बाह्य सुरक्षा करने में कितने सशक्त होंगे ? जब-जब सुरक्षा बल राष्ट्रविरोधी शक्तियों की गतिविधियों पर अंकुश लगाते हुए इनके समूलनाश का बीड़ा उठाते हैं, तो सत्ताधारी नेता 'रक्षकों' की कार्रवाई पर अंकुश लगाते हुए 'भक्षकों' से वार्त्ताएँ प्रारम्भ कर हमारे सैन्य-बल का मनोबल तोड़ते हैं। यह वही सैन्य-बल है, जिसने समय-समय पर चुनौतीपूर्ण घटनाक्रम में भी तिरंगे की शान को कम नहीं होने दिया; वरन् अपने अभूतपूर्व साहस, शौर्य, पराक्रम तथा रणकौशल का परिचय देते हुए राष्ट्रीय गौरव, सम्मान एवं स्वाभिमान को बढ़ाया ही है। इन्हीं प्रहरियों ने दुश्मनों की गोलियों को अपने सीने पर झेलते हुए विपरीत परिस्थितियों में भी कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा; वरन् सीना तानकर हर मोर्चे पर डटे रहे।

करगिल में तो दुश्मनों ने भारतीय सीमा लाँघकर हमारी कमजोर पड़ रही आन्तरिक सुरक्षा में सेंध लगा दी थी। पाकिस्तान ने करगिल का युद्ध भारत पर थोपकर यह जता दिया था कि यह देश आन्तरिक रूप से कितना 'सुरक्षित' है ? दुश्मन तो द्रास, तुरतुक, बटालिक, मरकोह, काकसर, तोलोलिंग की ऊँची दुर्गम पहाड़ियों तक आ पहुँचे थे। ३ मई, १९९९ को सबसे पहले भाड़े के घुसपैठियों की चहलकदमी देखी गयी थी। यह विश्व का अत्यधिक दुर्गम रणक्षेत्र है, जहाँ दुश्मन ११ हजार से १९ हजार की ऊँची बर्फीली चोटियों पर भारतीय बंकरों में कब्जा जमाये थे और पर्वतों से नीचे गाँव तक भी अपनी गश्त बढ़ा रहे थे; पर हमारे जाँबाज रणबाँकुरों ने विपरीत परिस्थितियों में भी लड़कर दुश्मनों को उलटे पाँव भागने पर विवश किया। टाइगिर हिल की तरह अन्य भारतीय चोटियों पर फिर से तिरंगा फहरा दिया गया। केवल इस युद्ध में २२ राज्यों के ४५० से भी अधिक जवानों ने अपनी शौर्य गाथाएँ अंकित कर देश की आन-बान व शान के लिए अपने प्राणों की आहुति दी। उन दिनों इन वीर बलिदानियों की चिताओं पर प्रत्येक नागरिक साश्रु श्रद्धावनत हुआ।

यदि केवल जम्मू-कश्मीर के सन्दर्भ में बात करें, तो यहाँ विगत सत्रह वर्षों के सशस्त्र आतंकवाद में ५०२४ सुरक्षाकर्मियों ने आन्तरिक सुरक्षा को बनाये रखने के लिए अपनी जानें दीं, साथ ही आतंकवादी हमलों के दौरान १२,१२४ सुरक्षाबल के जवान हताहत हुए। यह अलग बात है कि सुरक्षाबलों ने भी अलग-अलग घटनाओं में २०,६४७ आतंकवादियों को मार गिराया है। ये सभी आँकड़े जम्मू-कश्मीर सरकार द्वारा जारी किये गये हैं। इन आँकड़ों के अनुसार आतंकवादी हमलों में २१,६५६ नागरिक हताहत तथा ३,४०४ मारे गये हैं। आतंकवादियों ने १२७ ग्रामीण सुरक्षा समितियों के सदस्यों तक मौत के घाट उतारा, करीब दो हजार हिन्दुओं की बर्बरतापूर्वक हत्याएँ कीं, ८० सामूहिक हत्याकाण्डों को अंजाम दिया गया। राज्य से बाहर आतंकवादियों ने दिल्ली, गुजरात, बंगलोर, मुम्बई, नागपुर, चेन्नई आदि शहरों में विस्फोटों द्वारा अपनी उपस्थिति का एहसास कराया। मुम्बई की ट्रेनों में श्रृंखलाबद्ध विस्फोट, रघुनाथ मन्दिर से अक्षरधाम, काशी तथा श्रीराम मन्दिर तक के विस्फोटों की गूँज अभी थमी नहीं। पूर्वोत्तर राज्यों की स्थिति भी जगजाहिर है। विधानसभा से लेकर सर्वोच्च संस्था संसद् तक सब कुछ आतंकवादियों के निशाने पर है।

ऐसे कई आँकड़े यह तथ्य उजागर करने में क्षम हैं कि हमारे देश की आन्तरिक सुरक्षा दाँव पर लगी हुई है। कश्मीर में तो अतिसंवेदनशील क्षेत्र के सुरक्षा कवच को भी भेद कर, आतंकवादी एक मन्त्री को उसके निवास स्थान के ड्राइंगरूप में मारने में सफल हुए और इस हत्याकाण्ड के बाद वहाँ से भागने में भी सफल रहे। देश के सत्तासीन या फिर सत्ताहीन भी इस आरोप से अपने को शायद ही मुक्त कर पायेंगे कि वे कभी आतंकवाद के प्रति डटकर उठ खड़ा होने का मन बनाते हैं। आम नागरिक आतंकवादी की गोली से मरे या फिर आतंकवादी सुरक्षाकर्मियों की गोली से, यह सब 'मानवाधिकारों के हनन' के दायरे में आता है ! आतंकवादियों की धरपकड़ में यदि सुरक्षा बलों और आतंकवादियों के बीच हुई गोलीबारी की चपेट में कोई नागरिक मारा जाता है, तो उस अनहोनी हत्या के लिए कौन दोषी है ?

सुरक्षा बलों के मनोबल को तोड़ने में कई घटक सहायक हैं। उन पर मानवाधिकारों के हनन के अनेक उल्टे–सीधे आरोप मढ़ दिये जाते हैं और सरकार इन आरोपों की जाँच में पारदर्शिता लाने या फिर सुरक्षाबलों के समर्थन में बोलने में अधिक उत्साह नहीं दिखाती। जिस आतंकवादी को सुरक्षाबल अपनी जान की बाजी लगाकर पकड़ते हैं, उसे राज्य सरकार एक कमेटी के द्वारा 'जाँच पड़ताल' कर रिहा

कर देती है। जिन आतंकवादियों से सुरक्षाबल लोहा लेते हैं, उनमें से कुछ 'समर्पण नीति' की राशि के मोह में समर्पण करते हैं और सरकार द्वारा घोषित दो लाख रुपये के साथ-साथ मासिक दो हजार रुपये लेने के अधिकारी बन जाते हैं। बहुत अवसरों पर देखा गया है कि यही समर्पण करनेवाले आतंकवादी फिर आतंकवाद के रास्ते पर निकल पड़ते हैं और फिर सुरक्षाबलों को इनके पीछे दौड़ाया जाता है।

आज गोलमेज सम्मेलनों के द्वारा आतंकवाद का रास्ता अपनाकर भारत के विरुद्ध जंग लड़ने की मंशा से सीमा पार गये आतंकवादियों को 'क्षमा दान' देकर वापसी के पैकेजों की ओर ध्यान दिया जा रहा है। तो क्या ऐसी नीतियों से हमारे सुरक्षा बलों का मनोबल नहीं टूटेगा ? सुरक्षाबल को एक ही पाठ पढ़ाग़ा जाता है– 'देश के स्वाभिमान, सम्प्रभुता, एकता एवं अखण्डता की रक्षा करना।' इस मूल-मन्त्र को यह रणबाँकुरे पूरी सतर्कता के साथ निभा रहे हैं।

इस देश में सुरक्षाबलों के मनोबल को तोड़ने में समय-समय पर वह घृणित राजनीति आड़े आती है, जिसे देश से बड़ा अपनी पार्टी का 'घोषणा पत्र' दिखायी देता है, जो अवसरवादी राजनीति तथा निहित स्वार्थों को अधिक प्राथमिकता देती है। यह क्रम तो उसी दिन से शुरू हुआ था जब १६४७ में कबाइली आक्रमण के दौरान अचानक युद्ध-विराम की घोषणा की गयी थी। पाकिस्तान के ६३ हजार सैनिकों को बन्दी बनाये जाने के बावजूद केन्द्र सरकार 'पाक अधिकृत कश्मीर' के सन्दर्भ में पाकिस्तान से कोई ठोस समझौता नहीं कर पायी। १६६६ में करगिल युद्ध तो अपनी प्रतिरक्षा में लड़ा गया युद्ध था, जो दुश्मनों को अपनी सीमाओं से पीछे धकेलने तक ही सीमित रहा।

आज करगिल के वीर बलिदानियों के परिजन क्या सोच रहे होंगे कि यदि उन्होंने भी करगिल के रणबाँकुरों के शौर्य-पदक वापस किये होते, क्या फिर भी संसद् के मुख्य आरोपी मोहम्मद अफजल को सुप्रीम कोर्ट के आदेशानुसार फाँसी पर लटकाया जाता ? ऐसा आज इसलिए सोचा जा रहा है; क्योंकि संसद् भवन की रक्षा करनेवाले उन सुरक्षाकर्मियों के बलिदानों को सरकार ने अपेक्षित सम्मान नहीं दिया, जिन्होंने संसद् परिसर में घुसे पाँच सशस्त्र आतंकवादियों को मार गिराया था। यदि केन्द्र सरकार को इन बलिदानियों के प्रति लेशमात्र भी श्रद्धा का अनौपचारिक भाव भी होता, तो आतंकवादी अफजल को जरूर निश्चित तिथि पर फाँसी दी गयी होती।

क्यों राजनीतिक चौसर पर राष्ट्रविरोधी शक्तियों और राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रहरियों को एक ही तुला पर तौलकर देश की सम्प्रभुता एवं भावनात्मक एकता के साथ खिलवाड़ किया जा रहा है ! आज की राजनीति के गणित में सरकार ने आतंकवादियों को प्रोत्साहित करने तथा सुरक्षा बलों के मनोबल को तोड़ने की वार्त्ताओं में जनता को भी यह आभास दिलाया कि जितना बड़ा अपराध होता है, आतंकवादी का कद उतना ही बड़ा और बलिदानी का कद उतना ही छोटा हो जाता है। अफजल की फाँसी को रोकने के लिए जम्मू-कश्मीर में सत्ताहीन कांग्रेस-पीडीपी तथा मार्क्सवादी पार्टी तथा सत्तासीन नेशनल कान्फ्रेन्स व कांग्रेस के साथ-साथ अलगाववादियों तथा आतंकवादियों ने भी जोरदार वकालत की। जम्मू-कश्मीर की कानून-व्यवस्था को बनाये रखने के लिए नजरबन्द अफजल को बचाना अहम मुद्दा माना गया; जबकि बलिदानी वीरों के परिजनों समेत भाजपा, आतंकवाद विरोधी मोर्चा, शिव सेना तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ आदि ने सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का समर्थन किया। इस वैचारिक युद्ध में सरकारी वार्त्ताओं ने बलिदानी वीरों के परिजनों के साथ-साथ देश की जनता को भी हतोत्साहित किया। इस घटना से सुरक्षा बलों का मनोबल टूटना भी स्वाभाविक ही होगा।

यह राष्ट्रीय शर्म का विषय है कि सरकार अपने रणबाँकुरों की शौर्य गाथाओं के सम्मान में दिये गये पदकों की प्रतिष्ठा को बनाये नहीं रख पायी। हतोत्साहित उनके परिजनों ने वे 'सम्मान मैडल' वापस लौटा दिये, जो संसद् के रणबाँकुरों की स्मृति में उन्हें प्रदान किये गये थे। ऐसे अनेक अवसर आये हैं, जब सरकार ने नकारात्मक रवैया अपना कर सुरक्षा बलों के मनोबल को तोड़ा है। जब पाकिस्तानपरस्त अलगाववादी सैय्यद अलीशाह गिलानी को अमरीका ने यह कहकर वीजा देने से इनकार कर दिया कि वह कश्मीर में हिंसा का साथ नहीं छोड़ रहा है, तो हमारे प्रधानमन्त्री ने गिलानी की चिकित्सा में हर सम्भव सहायता करने का आश्वासन सार्वजनिक रूप से दिया था। ध्यान रहे कि अमरीका में उपचार करने के लिए भारत ने पहले ही उसके लिए पासपोर्ट जारी कर दिया था।

जब कुलहांड और बसंतगढ़ क्षेत्र में ३० से अधिक लोगों को आतंकवादियों ने सामूहिक रूप से भून डाला, तो हमारे प्रधानमन्त्री अगले ही दिन आतंकवादी यासीन मलिक के साथ हाथ मिलाने में व्यस्त थे। यह अलग बात है कि अभिनेता संजय दत्त की रिहाई के बाद कुछ सिपाहियों द्वारा उनसे हाथ मिलाने को अपराध माना गया, पर संजय दत्त तो केवल अवैध हथियार रखने के आरोप में बन्दी थे, यहाँ तो सत्तासीन नेता सशस्त्र आतंकवाद में सक्रिय रहे आतंकवादियों तथा अलगाववादियों से हाथ मिलाते देखे गये, उनके अपराध पर किसी की नजर क्यों नहीं पड़ती ? नजर पड़े भी, तो ऐसी घटनाएँ अपराध के दायरे में क्यों नहीं आतीं ?

सुरक्षाबल तो देश की सुरक्षा की शपथ लिये अंगद के पाँव की तरह अडिग एवं अविचल हैं; पर सरकार का यह दायित्व बनता है कि वह पार्टी से देश को बड़ा माने; सुरक्षा के प्रहरियों के बलिदान का सम्मान करना सीखें।

– *'विद्यानिवास', शारदा कालोनी, पटोली ब्रह्मणा, मुट्ठी, जम्मू– १८१२०५*

धरोहर

क्या लिखूँ ?

– पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

मुझे आज लिखना ही पड़ेगा। अंग्रेजी के प्रसिद्ध निबन्ध लेखक ए.जी. गार्डिनर का कथन है कि लिखने की एक विशेष मानसिक स्थिति होती है। उस समय मन में कुछ ऐसी उमंग-सी उठती है; हृदय में कुछ ऐसी स्फूर्ति-सी आती है; मस्तिष्क में कुछ ऐसा आवेग-सा उत्पन्न होता है कि लेख लिखना ही पड़ता है। उस समय विषय की चिन्ता नहीं रहती। कोई भी विषय हो, उसमें हम अपने हृदय के आवेग को भर ही देते हैं। हैट टाँगने के लिए कोई भी खूँटी काम दे सकती है। उसी तरह अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए कोई भी विषय उपयुक्त है। असली वस्तु है हैट, खूँटी नहीं। इसी तरह मन के भाव ही तो यथार्थ वस्तु हैं, विषय नहीं। गार्डिनर साहब के इस कथन की यथार्थता में मुझे सन्देह नहीं; पर मेरे लिए कठिनता यह है कि मैंने उस मानसिक स्थिति का अनुभव ही नहीं किया है, जिसमें भाव अपने आप उपस्थित हो जाते हैं। मुझे तो सोचना पड़ता है; चिन्ता करनी पड़ती है; परिश्रम करना पड़ता है, तब कहीं मैं एक निबन्ध लिख सकता हूँ। आज तो मुझे विशेष परिश्रम करना पड़ेगा; क्योंकि मुझे कोई साधारण निबन्ध नहीं लिखना है। आज मुझे नमिता और अमिता के लिए आदर्श निबन्ध लिखना होगा। नमिता का आदेश है कि मैं 'दूर के ढोल सुहावने होते हैं' इस विषय पर लिखूँ। अमिता का आग्रह है कि मैं 'समाज सुधार' पर लिखूँ। ये दोनों ही विषय परीक्षा में आ चुके हैं और इन दोनों पर आदर्श निबन्ध लिखकर मुझे उन दोनों को निबन्ध-रचना का रहस्य समझाना पड़ेगा।

दूर के ढोल सुहावने अवश्य होते हैं; पर क्या वे इतने सुहावने होते हैं कि उन पर पाँच पेज लिखे जा सकें ? इसी प्रकार जिस समाज-सुधार की चर्चा अनादि काल से लेकर आज तक होती आ रही है और जिसके सम्बन्ध में बड़े-बड़े विज्ञों में भी विरोध है, उसको मैं पाँच पेजों में कैसे लिख दूँ? मैंने सोचा कि सबसे पहले निबन्ध-शास्त्र के आचार्यों की सम्मति जान लूँ। पहले यह तो समझ लूँ कि आदर्श निबन्ध है क्या और वह कैसे लिखा जाता है, तब फिर मैं विषय की चिन्ता करूँगा। इसी लिए मैंने निबन्ध-शास्त्र के कई आचार्यों की रचनाएँ देखीं। एक विद्वान् का कथन है कि निबन्ध छोटा होना चाहिए। छोटा निबन्ध बड़े की अपेक्षा अधिक अच्छा होता है; क्योंकि बड़े में रचना की सुन्दरता नहीं बनी रह सकती। इस कथन को मान लेने में ही मेरा लाभ है। मुझे छोटा ही निबन्ध लिखना है, बड़ा नहीं; पर लिखूँ कैसे ? निबन्ध-शास्त्र के उन्हीं आचार्य महोदय का कथन है कि निबन्ध के दो प्रधान अंग हैं– सामग्री और शैली। पहले तो मुझे सामग्री एकत्र करनी होगी, विचार-समूह सञ्चित करना होगा। इसके लिए मुझे मनन करना चाहिए। यह तो सच है कि जिसने जिस विषय का अच्छा अध्ययन किया है, उसके मस्तिष्क में उस विषय के विचार आते हैं; पर यह कौन जानता था कि 'दूर के ढोल सुहावने' पर भी निबन्ध लिखने की आवश्यकता होगी। यदि यह बात पहले से ज्ञात होती, तो पुस्तकालय में जाकर इस विषय का अनुसन्धान कर लेता; पर अब समय नहीं है। मुझे तो यहीं बैठकर दो ही घण्टों में दो निबन्ध तैयार कर देने होंगे। यहाँ न तो विश्वकोश है और न कोई ऐसा ग्रन्थ, जिसमें इन विषयों की सामग्री उपलब्ध हो सके। अब तो मुझे अपने ही ज्ञान पर विश्वास कर लिखना होगा।

विज्ञों का कथन है कि निबन्ध लिखने के पहले उसकी रूप-रेखा बना लेनी चाहिए। अतएव सबसे पहले मुझे 'दूर के ढोल सुहावने' की रूप-रेखा बनानी है। मैं सोच ही नहीं सकता कि इस विषय की कैसी रूप-रेखा है ? निबन्ध लिख लेने के बाद मैं उसका सारांश कुछ ही वाक्यों में भले ही लिख दूँ; पर निबन्ध लिखने के पहले उसका सार दस-पाँच शब्दों में कैसे लिखा जाये ? क्या सचमुच हिन्दी के सब विज्ञ लेखक पहले से अपने-अपने निबन्धों के लिए रूप-रेखा तैयार कर लेते हैं ? ए.जी. गार्डिनर को तो अपने लेखों का शीर्षक बनाने में ही सबसे अधिक कठिनाई होती है। उन्होंने लिखा है कि मैं लेख लिखता हूँ और शीर्षक देने का भार मैं अपने मित्र पर छोड़ देता हूँ। उन्होंने यह भी लिखा है कि शेक्सपियर को भी नाटक लिखने में जितनी कठिनता न हुई होगी, उतनी कठिनता नाटकों के नामकरण में हुई होगी। तभी तो घबड़ाकर नाम न रख सकने के कारण उन्होंने अपने एक नाटक का नाम रखा 'ऐज यू लाइक इट' (जैसा तुम चाहो)। इसलिए मुझसे तो यह रूप-रेखा तैयार न होगी। अब मुझे शैली निश्चित करनी है। आचार्य महोदय का कथन है कि भाषा में प्रवाह होना चाहिए। इसके लिए वाक्य छोटे-छोटे हों; पर एक-दूसरे से सम्बद्ध। यह तो बिल्कुल ठीक है। मैं छोटे–छोटे वाक्य अच्छी तरह लिख सकता हूँ; पर मैं हूँ मास्टर। कहीं नमिता और अमिता यह न समझ बैठें कि मैं यह निबन्ध बहुत मोटी अक्लवालों के लिए लिख रहा हूँ। अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन करने के लिए अपना गौरव स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि वाक्य कम से कम आधे पृष्ठ में तो समाप्त हो। बाणभट्ट ने कादम्बरी में ऐसे ही वाक्य लिखे हैं। वाक्यों में कुछ अस्पष्टता भी चाहिए; क्योंकि यह अस्पष्टता या दुर्बोधता गाम्भीर्य ला देती है। इसीलिए संस्कृत के प्रसिद्ध कवि श्रीहर्ष ने जान-बूझकर अपने काव्य में ऐसी गुत्थियाँ डाल दी हैं, जो अज्ञों से न सुलझ सकें और सेनापति ने भी अपनी कविता मूढ़ों के लिए दुर्बोध कर दी है। तभी तो अलंकारों, मुहावरों और लोकोक्तियों का समावेश भी निबन्धों के लिए आवश्यक बतलाया जाता है। तब क्या किया जाये ?

अंग्रेजी के निबन्धकारों ने एक दूसरी ही पद्धति को अपनाया है। उनके निबन्ध इन आचार्यों की कसौटी पर भले ही खरे सिद्ध न हों; पर अंग्रेजी साहित्य में उनका मान अवश्य है। उस पद्धति के जन्मदाता मानहेन समझे जाते हैं। उन्होंने

स्वयं जो कुछ देखा, सुना और अनुभव किया, उसी को अपने प्रबन्धों में लिपिबद्ध कर दिया। पाश्चात्य साहित्य में ऐसे निबन्धों का विकास आधुनिक युग में हुआ है। आख्यायिका की तरह यह निबन्ध-कला भी आधुनिक युग की रचना है। ऐसे निबन्धों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे मन की स्वच्छन्द रचनाएँ हैं। उनमें न कवि की उदात्त कल्पना रहती है, न आख्यायिका-लेखक की सूक्ष्म-दृष्टि और न विज्ञों की गम्भीर तर्कपूर्ण विवेचना। उनमें लेखक की सच्ची अनुभूति रहती है; उनमें उसके सच्चे भावों की सच्ची अभिव्यक्ति होती है; उनमें उसका उल्लास रहता है। कवि उच्च मार्ग से प्रेरित होकर काव्य की रचना करते हैं, विज्ञ ज्ञान की कसौटी पर सत्य की परीक्षा कर प्रबन्ध लिखते हैं। आख्यायिका-लेखक कल्पना के द्वारा मनुष्य-जीवन का रहस्य प्रत्यक्ष कराने के लिए चरित्र-वैचित्र्य और घटना-वैचित्र्य की सृष्टि करते हैं; पर ये निबन्ध तो उस मानसिक स्थिति में लिखे जाते हैं, जिसमें न ज्ञान की गरिमा रहती है और न कल्पना की महिमा, जिसमें जीवन का गौरव भूलकर हम अपने में ही लीन हो जाते हैं, जिसमें हम संसार को अपनी ही दृष्टि से देखते हैं और अपने ही भाव से ग्रहण करते हैं। तब इसी पद्धति का अनुसरण कर मैं भी क्यों न निबन्ध लिखूँ; पर मुझे तो दो निबन्ध लिखने होंगे।

मुझे अमीर ख़ुसरो की एक कहानी याद आयी। एक बार प्यास लगने पर वे एक कुएँ के पास पहुँचे। वहाँ चार औरतें पानी भर रही थीं। पानी माँगने पर पहले उनमें से एक ने खीर पर कविता सुनने की इच्छा प्रकट की, दूसरी ने चर्खे पर, तीसरी ने कुत्ते पर और चौथी ने ढोल पर। अमीर खुसरो प्रतिभावान् थे, उन्होंने एक ही पद्य में चारों की इच्छाओं की पूर्त्ति कर दी। उन्होंने कहा–

खीर पकाई जतन से, चर्खा दिया चला;
आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजा।

मुझमें खुसरो की प्रतिभा नहीं है; पर उनकी इस पद्धति को स्वीकार करने से मेरी कठिनाई आधी रह जाती है। मैं भी एक ही निबन्ध में इन दोनों विषयों का समावेश कर दूँगा, एक ही ढेले से दो चिड़ियाँ मार लूँगा।

दूर के ढोल सुहावने होते हैं; क्योंकि उनकी कर्कशता दूर तक नहीं पहुँचती। जब ढोल के पास बैठे हुए लोगों के कान के पर्दे फटते रहते हैं, तब दूर किसी नदी के तट पर सन्ध्या समय, किसी दूसरे के कान में वही शब्द मधुरता का सञ्चार कर देते हैं। ढोल के उन्हीं शब्दों को सुनकर वह अपने हृदय में किसी के विवाहोत्सव का चित्र अंकित कर लेता है। कोलाहल से पूर्ण घर के एक कोने में बैठी हुई किसी लज्जाशीला नववधू की कल्पना वह अपने मन में कर लेता है। उस नववधू के प्रेम, उल्लास, संकोच, आशंका और विषाद से युक्त हृदय के कम्पन, ढोल की उस कर्कश ध्वनि को मधुर बना देते हैं। सच तो यह है कि ढोल की ध्वनि के साथ आनन्द का कलरव, उत्सव का प्रमोद और प्रेम का संगीत ये तीनों मिले रहते हैं, तभी उनकी कर्कशता समीपस्थ लोगों को भी कटु नहीं प्रतीत होती और दूरस्थ लोगों के लिए तो वह अत्यन्त मधुर बन जाती है।

यह बात सच है कि दूर रहने से हमें यथार्थता की कठोरता का अनुभव नहीं होता। यही कारण है कि जो तरुण संसार के जीवन-संग्राम से दूर हैं, उन्हें संसार का चित्र बड़ा ही मनोमोहक प्रतीत होता है। प्रेम की वेदना ही उनके लिए वेदना है। प्रियतमा की निष्ठुरता ही उनके लिए निष्ठुरता है। प्रेम का व्यवसाय ही उनका एक व्यवसाय है। प्रेम ही उनके लिए आटा-दाल है और प्रेम ही उनका सर्वस्व है। वे प्रियतमा की गोद में रोग की यन्त्रणा भूल जाते हैं। प्रियतमाएँ भी सन्ध्या के समय में प्रियतम के अंक में मृत्यु का अनुभव करने के लिए लम्बी यात्रा का कष्ट सह लेती हैं। तरुणों के लिए रोग और मृत्यु दोनों सुखद हैं; क्योंकि दोनों में प्रेम की मधुरता है; पर संसार में प्रविष्ट होते ही प्रेम का यह कल्पित संसार न जाने कहाँ विलीन हो जाता है ! तब उन्हें संसार की यथार्थता का ज्ञान होता है, तब उन्हें जीवन की कटुता का अनुभव होता है और तभी उन्हें ढोल की कर्कशता मालूम हो जाती है।

जो वृद्ध हो गये हैं, जो अपनी बाल्यावस्था और तरुणावस्था से दूर हट आये हैं, उन्हें अपने अतीत काल की स्मृति बड़ी सुखद हो जाती है। वे अतीत का ही स्वप्न देखते हैं। तरुणों के लिए जैसे भविष्य उज्ज्वल होता है, वैसे ही वृद्धों के लिए अतीत। वर्त्तमान से दोनों को असन्तोष होता है। तरुण भविष्य को वर्त्तमान में लाना चाहते हैं और वृद्ध अतीत को खींचकर वर्त्तमान में देखना चाहते हैं। तरुण क्रान्ति के समर्थक होते हैं और वृद्ध अतीत-गौरव के संरक्षक। इन्हीं दोनों के कारण वर्त्तमान सदैव क्षुब्ध रहता है और इसी से वर्त्तमान काल सदैव सुधारों का काल बना रहता है।

मनुष्य-जाति के इतिहास में कोई ऐसा काल ही नहीं हुआ, जब सुधारों की आवश्यकता न हुई हो। तभी तो आज तक कितने ही सुधारक हो गये हैं; पर सुधारों का अन्त कब हुआ है ? भारत के इतिहास में बुद्धदेव, महावीर स्वामी, नागार्जुन, शंकराचार्य, कबीर, नानक, राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द और महात्मा गान्धी में ही सुधारकों की गणना समाप्त नहीं होती। सुधारकों का दल नगर-नगर और गाँव-गाँव में होता है। यह सच है कि जीवन में नये-नये दोष उत्पन्न होते जाते हैं और नये-नये सुधार होते जाते हैं। न दोषों का अन्त है और न सुधारों का। जो कभी सुधार थे, वही आज दोष हो गये हैं और उन सुधारों का फिर नव सुधार किया जाता है। तभी तो यह जीवन प्रगतिशील माना गया है।

हिन्दी में भी प्रगतिशील साहित्य का निर्माण हो रहा है। उसके निर्माता यह समझ रहे हैं कि उनके साहित्य में भविष्य का गौरव निहित है; पर कुछ ही समय के बाद उनका यह साहित्य भी अतीत का स्मारक हो जायेगा और आज जो तरुण हैं, वही वृद्ध होकर अतीत के गौरव का स्वप्न देखेंगे। उनके स्थान में तरुणों का फिर दूसरा दल आ जायेगा, जो भविष्य का स्वप्न देखेगा। दोनों के ही स्वप्न सुखद होते हैं; क्योंकि दूर के ढोल सुहावने होते हैं। □

– प्रस्तुति : डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'
८६, तिलक नगर, बाईपास रोड,
फीरोजाबाद– २८३२०३

प्रतिवाद

पाकिस्तान में हिन्दू होने का त्रास

– डॉ. शिवओम अम्बर

राष्ट्रकवि 'दिनकर' ने कभी भारतीय जन-जीवन में अग्नि की अनुपस्थिति को रेखांकित करते हुए कहा था–

यज्ञाग्नि हिन्द में समिध नहीं पाती है,
पौरुष की ज्वाला रोज बुझी जाती है।

उनकी दृष्टि में जो लोग हर समय और हर कीमत पर शान्ति की बात करते हुए समझौतों की वर्तनी रटने लगते हैं, वे किसी भी राष्ट्र के 'स्व' को धूमिल करने के अपराधी हैं। वे निर्भ्रान्त स्वर तथा कठोर शब्दों में उद्घोषित करते हैं–

वो अघी बाहुबल का जो अपलापी है,
जिसकी ज्वाला बुझ गयी वही पापी है।

स्वतन्त्रता-संघर्ष के दौरान जोश मलीहाबादी ने हिन्दुस्तानी प्रकृति की इस सर्वसहा प्रवृत्ति पर प्रहार करते हुए कहा था–

सानिया मिर्जा

गर्दन की तौक हाथ की जञ्जीर काट दे,
इतनी गुलाम कौम में हिम्मत कहाँ है जोश।
इक हर्फ गलत सुनते ही लौ दे उठे दिमाग,
हिन्दोस्तान में वो हरारत कहाँ है जोश !

और आपातकालीन अँधेरों में इसी अग्नि का आह्वान करते हुए दुष्यन्त कुमार एक सामान्य भारतीय के चित्त में अस्वीकृति की, अमर्ष की, आक्रोश की अदम्य लौ को दीप्त-प्रदीप्त देखना चाहते थे–

सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग लेकिन आग जलनी चाहिए।

जो कुछ गलत है, उसका प्रतिवाद; जो कुछ विरोध के योग्य है, उसका प्रतिरोध और जिसके लिए चित्त से नकार उठती है, उसका प्रतिकार करने के लिए प्रस्तुत स्तम्भ संकल्पित है–

कुलदीप नैय्यर

ध्वंस है पहला कदम निर्माण के पथ पर,
सीखने दो शब्द को संहार की भाषा।
एक नफरत-सी रही हमको तटस्थों से,
जन्म से हमने पढ़ी मँझधार की भाषा।...

इस बार की चर्चा का विषय है एक यात्रा-वृत्तान्त, जो पाकिस्तान में रह रहे हिन्दुओं के सन्त्रास की निःश्वासों को भी समाहित किये है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार असगर वजाहत का एक विस्तृत यात्रा-संस्मरण 'नया ज्ञानोदय' में प्रकाशित हुआ– पाकिस्तान का मतलब क्या ? उन्होंने अपने डेढ़ महीने के पाकिस्तान-प्रवास के अनुभवों को लिपिबद्ध करते हुए वहाँ के आम आदमी की बदहाली, कुछ विशिष्ट केन्द्रों में सत्ता और शक्ति के ध्रुवीकरण, परिवेश में परिव्याप्त मजहबी कट्टरता की गन्ध और सहज संवेदनशील सहित्यकारों की घुटन और टूटन का प्रभावी चित्रण तथा विश्लेषण इस सफरनामे में प्रस्तुत किया है। प्रसंगवश पाकिस्तान में हिन्दू और हिन्दी की स्थिति का भी वर्णन उपस्थित हुआ है, जिसे पढ़कर एक आघात-सा लगता है ! **पाकिस्तान के एक क्रिकेटर हिन्दुस्तानी चैनलों पर तमाम वस्तुओं के विज्ञापन करते नजर आते हैं; एक के ऊपर फिदा होकर तो एक हिन्दुस्तानी महिला खिलाड़ी तमाम विसंगतियों को स्वीकार करते हुए देश ही छोड़ गयी; वहाँ की बिन्दास बालाएँ आज के हिन्दी कार्यक्रमों की नयी सनसनी बनी हुई हैं, वहाँ के किसी भी गायक के यहाँ की जमीन पर कदम रखते ही कदमबोसी करनेवालों की कतारें लगने लगती हैं और भारतीय समाचारपत्रों के कुछ स्वनामधन्य स्तम्भ-लेखक मित्रता का मालकौस राग गाते हुए वर्ष में एकाधिक बार बाघा सीमा पर जाकर मोमबत्तियाँ जला ही आते हैं; किन्तु कभी किसी ने एक बार भी नहीं सोचा कि उनके द्वारा इतने अधिक आदृत, प्रशंसित पाकिस्तान की स्थायी वृत्ति और आन्तरिक प्रवृत्ति क्या है, कैसी है ? वहाँ के हिन्दुओं और अन्य अल्पसंख्यकों के ऊपर एक विशिष्ट धार्मिक कानूनं का खतरा हर समय मँडराता रहता है।** व्यावहारिक जगत् में वह हर प्रकार के शोषण का एक अमोघ अस्त्र है। असगर वजाहत उस कानून के बारे में इस प्रकार बताते हैं– "जनरल जियाउल् हक ने अपनी सत्ता बनाये रखने और लोकतान्त्रिक आन्दोलन को दबाये रखने के लिए इस्लाम-धर्म का सहारा लिया था और पाकिस्तान का इस्लामाइजेशन कर दिया था। पाकिस्तान को इस्लामी रिपब्लिक बना दिया गया था। तौहीने रिसालत इस्लामी कानून बनाये गये थे। इन्हीं कानूनों में 'ब्लैस्फेमी लॉ' भी बनाया गया था। इसके अन्तर्गत अगर किसी गैर–मुस्लिम के बारे में दो मुसलमान यह गवाही दे दें कि आदमी/औरत ने ऐसा कुछ किया, लिखा या बोला है, जिससे पैगम्बर मोहम्मद साहब का अपमान होता है, तो धार्मिक अदालत आरोपी को फाँसी की सजा देगी।... इस
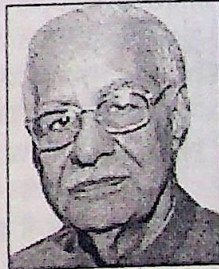
कानून का एक पक्ष यह है कि मुस्लिम जनता के दिमाग में यह बात बैठा दी गयी है कि तौहीने रिसालत की हत्या से पवित्र कोई और काम नहीं होता। खुले आम धार्मिक नेता घोषणाएँ करते हैं कि यदि अमुक-अमुक ब्लैस्फेमी के अपराधी की कोई हत्या कर देगा, तो उसे इतने लाख का इनाम मिलेगा।"

हिन्दुस्तान के प्रति नफरत की शिक्षा बच्चों को अपनी पाठ्य पुस्तकों में ही पढ़ने को मिल जाती है और वे ऐसी ही घुट्टी पीकर बड़े होते हैं– यह तथ्य तो पहले कई बार कथित और प्रमाणित है, असगर साहब का आलेख बताता है कि एक आम पाकिस्तानी के मन में हिन्दुस्तान के प्रति पूर्वग्रह भी है और एक अदम्य आकर्षण भी। वहाँ का बुद्धिजीवी भारतीय प्रगति के प्रति आदर-भाव रखता है; यहाँ के लोकतन्त्र को वहाँ लाने का स्वप्न देखता है; लेकिन भारत के द्वारा सदभावना के निरन्तर प्रदर्शन के बाद भी उसे इस बात का भरोसा नहीं दिलाया जा सकता कि भारत वस्तुतः पाकिस्तान के खिलाफ नहीं है, वह भारत को खलनायक ही मानता है।

प्रह्लाद मन्दिर (मुल्तान)

अब जरा एक दृष्टि हिन्दुओं की स्थिति पर– पाकिस्तान के एक प्रमुख नगर मुल्तान के सम्बन्ध में असगर साहब का यह उल्लेख हमें समूचे पाकिस्तान का दृष्टिकोण समझा सकता है। मैं असगर वजाहत को ही उद्धृत कर रहा हूँ– "प्रह्लाद का विशाल मन्दिर मुल्तान किले में सूफी शेख बहाउद्दीन जकरिया के मकबरे के बराबर खड़ा था। विभाजन के बाद भी इस मन्दिर में पूजा आदि होती थी और श्रद्धालु दर्शन करने आते थे; लेकिन १९९२ में बाबरी मस्जिद को तोड़े जाने की प्रतिक्रियास्वरूप मुल्तान का यह मन्दिर ध्वस्त कर दिया गया था। ध्वस्त मन्दिर अब भी देखा जा सकता है। मुझे मालूम था कि विभाजन-पूर्व मुल्तान हिन्दुओं और जैनियों का प्रमुख केन्द्र था। मैंने जिज्ञासावश काजमी साहब से मुल्तान के हिन्दुओं के बारे में जानकारी चाही। हम लोग प्रह्लाद का ध्वस्त मन्दिर देखने जा रहे थे।

मैंने पूछा– क्या मुल्तान में हिन्दू हैं ?

उन्होंने कहा– हाँ हैं।

कहाँ रहते हैं ? कितने हैं ?

यही कोई दस-पाँच होंगे– वे बोले।

कहाँ रहते हैं ?

मुझे मालूम नहीं– यहीं कहीं होंगे।

क्या उनसे मिला जा सकता है ?

मिला जा सकता है ? उन्होंने आश्चर्य से कहा–

हाँ-हाँ।

पता नहीं कहाँ होंगे ! ... सब... वो... क्या कहते हैं... सफाई वगैरह का काम करते हैं।

हम लोग प्रह्लाद मन्दिर के पास आ गये। शेख बहाउद्दीन जकरिया के मकबरे के बिलकुल पास विशाल मन्दिर इस तरह टूटा-फूटा पड़ा था जैसे किसी महान् आदर्श के टुकड़े कर दिये गये हों।...

यह यात्रा-वृत्तान्त इस भयावह तथ्य को भी रेखांकित करता है कि पाकिस्तान में अपनी पहचान छिपाने के लिए हिन्दू स्त्रियों ने साड़ी पहनना तथा बिन्दी आदि सोहाग-चिह्नों का धारण करना छोड़ रखा है और सभी स्त्री-पुरुषों ने बाहर पुकारे जाने के लिए छद्म मुस्लिम नाम धारण कर रखे हैं। वहाँ हिन्दू नाम और वेषभूषा के साथ बाहर निकलना एक आत्मघाती कदम है।

अन्तिम टिप्पणी हिन्दी की दशा के बारे में– वजाहत साहब कराची में साहित्य और समाज के प्रति निष्ठावन्त अजमल कमाल से मिले, जो समग्र विश्व साहित्य के प्रति अभिरुचि रखते हैं। उनसे प्रश्न किया गया–

पाकिस्तान में हिन्दी कहीं नहीं पढ़ायी जाती ?

हाँ... कहीं नहीं.... हम लोगों को बड़ी मुश्किल होती है। यहाँ एक ग्रुप है, जिसने हिन्दी सीख ली है। इसमें डॉ. आसिफ फर्रुखी, डॉ. रफीक अहमद नक्श और उनकी पत्नी हैं। एक-दो लोग और हैं। जमाल साहब तो हिन्दुस्तान से हिन्दी अदब का उर्दू में तर्जुमा करते हैं।...

कल्पना की जा सकती है कि जब कराची में यह स्थिति है, तो अन्य स्थानों पर हिन्दी कितनी उपेक्षित होगी! वे लोग जो साझा संस्कृति के पैरोकार और अलमबरदार बनकर दिल्ली-लखनऊ में आलमी मुशायरे आयोजित करते हैं और अपने अतिथियों के लिए पलक-पाँवड़े बिछाये रखते हैं, उन्हें विविध भाषा-विमर्शों के मध्य भारत की भाषा हिन्दी की याद क्यों नहीं आती ?

बहरहाल, यह सफरनामा एक संवेदनशील साहित्यकार की इन पंक्तियों के साथ विराम पाता है– **"मैं एक इस्लामी मुल्क देख आया हूँ। मैं मुसलमान हूँ। अब मैं लौटकर लोकतन्त्र में आ गया हूँ। चाहे जितनी खराबियाँ हों; लेकिन मैं इस लोकतन्त्र में पाकिस्तान का हिन्दू या ईसाई नहीं हूँ। मैं कादयानी भी नहीं हूँ... मैं जो हूँ वो हूँ... मुझे न तो अपने धार्मिक विश्वासों की वजह से कोई डर है और न अपने विचारों की वजह से कोई खौफ है।..."**

१९४७ में तत्कालीन भारतीय नेतृत्व की सत्ता-लोलुपता, कापुरुषता, अदूरदर्शिता और चरित्र-भ्रष्टता ने पाकिस्तान में जिस हिन्दू समुदाय को एक सतत सन्त्रास जीने को विवश कर दिया, क्या उसके लिए अब कुछ भी नहीं किया जा सकता ? □

– ४/१०, नुनहाई स्ट्रीट, फर्रुखाबाद (उ.प्र.)

राष्ट्र-भाव सतत जाग्रत रखना होगा

– राजनाथ सिंह सूर्य
(वरिष्ठ पत्रकार, भू.पू. सांसद राज्यसभा)

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना ए.ओ. ह्यूम ने सम्पन्न-वर्ग के भारतीयों को ब्रिटिश शासन के अनुकूल बनाने के लिए की थी। उनका उद्देश्य था कि १८५७ के समान फिर कहीं स्वाधीनता के लिए आवाज या शस्त्र न उठने पाये। इसलिए जिसे 'इलीट' वर्ग कहा जाता है, वह ब्रिटिश सत्ता के अन्तर्गत अपना कल्याण समझते हुए अपनी समस्याओं के समाधान हेतु उनकी सत्ता के प्रति अनुकूल भाव रखे। कांग्रेस का यह स्वरूप १९१४ में हुए प्रथम विश्वयुद्ध तक बना रहा। इस बीच लाला लाजपतराय, बाल गंगाधर तिलक और विपिनचन्द्र पाल की त्रिमूर्त्ति, जो लाल, बाल और पाल के नाम से पहचानी जाती थी, तिलक के 'स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' की भावना जाग्रत करने में लगी हुई थी। कांग्रेस के १९११ के कलकत्ता अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित कर कानून में भारत की यात्रा पर आनेवाले ब्रिटिश सम्राट् से भारतीयों के लिए अधिक सुविधाओं का निवेदन करते हुए उनकी यात्रा का स्वागत किया गया था। इसी अधिवेशन १९१२ में सम्राट् के स्वागत में रचा गया एक गीत भी गाया गया, जो आज हमारा राष्ट्रगीत बन गया है। संविधान सभा द्वारा जन गण मन अधिनायक को राष्ट्रगीत के रूप में स्वीकार करने के पूर्व और १९११ के कलकत्ता अधिवेशन के बीच किसी ने भी इस गीत का संज्ञान नहीं लिया था। सभी आन्दोलनों का नारा 'वन्दे मातरम्' और 'भारतमाता की जय', जो एक बार २०११ के प्रारम्भिक महीनों में अन्ना हजारे ने आन्दोलन के समय फिर से सारे देशवासियों के कण्ठ से निनादित हुआ। संविधान सभा में राष्ट्रगीत पर कोई चर्चा तक नहीं हुई। देश के उस समय के महान् नेताओं द्वारा राष्ट्रीय स्वाभिमान के विपरीत **एक विदेशी शासक के स्वागत के लिए रचित जन गण मन अधिनायक पूरा १५ अगस्त, २०११ को भारत सरकार द्वारा प्रसारित किया गया और बड़े गर्व से टी.वी. चैनलों ने गर्वोक्ति के साथ गीत के उस भाग का गायन अपने चैलनों पर प्रसारित किया, जिसमें ऐसे राज राजेश्वर के सिंहासन के सामने पूरब और पश्चिम के सभी लोग प्रेमाहार की माला गूँथते हुए उनके राज्य में सूर्यास्त न होने के रूप में स्मरण किया गया है। क्या कारण था कि हमने 'वन्दे मातरम्' के स्थान पर गुलामी को सौभाग्य माननेवाले इस गीत को राष्ट्रगान के रूप स्वीकार कर लिया ?**

क्योंकि राष्ट्रीय भावना स्वदेशी अनुभूति और स्वाभिमान युक्त राष्ट्र जीवन का अवधारणा जिन महापुरुषों में थी, जिनमें से महात्मा गान्धी, पण्डित मदनमोहन मालवीय आदि का स्वर्गवास हो चुका था। लाल, बाल, पाल तो बहुत पहले जा चुके थे। इक्का-दुक्का जो बचे थे जैसे डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद, जो संविधान सभा के अध्यक्ष थे और सरदार वल्लभ भाई पटेल क्यों इसे स्वीकार करने पर राजी हो गये, यह रहस्यमय बना हुआ है; क्योंकि संविधान सभा में यही एक मुद्दा है, जिस पर कोई बहस नहीं हुई।

हमने अंग्रेजी को देश की शासकीय भाषा को मात्र दस वर्ष तक के लिए 'सहायक' भाषा के रूप में स्वीकार किया था, वह हमारी अनन्त काल के लिए स्थायी सरकारी भाषा बन गयी है। हमने स्वदेशी उत्पादन को महत्त्व देते हुए विदेशी कपड़ों की होली जलायी, आज घर-घर में विदेशी सामग्री की भरमार है। हमने अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए इसलिए बाध्य किया; क्योंकि वे हमारी सम्पदा को लूटकर बाहर ले जा रहे थे। आज हमारी सरकार ही ऐसे लुटेरों की पक्षधर बनकर खड़ी दिखायी पड़ रही है। हमने भारत का बँटवारा करनेवाले द्विराष्ट्रवाद के पाकिस्तान की यात्रा करनेवालों के साथ समझौते से इनकार किया था और संविधान सभा में कुछ मुस्लिम सदस्यों ने जब मुस्लिम अल्पसंख्यकों को आरक्षण देने का प्रस्ताव किया, तो डाक्टर अम्बेडकर ने कहा था कि हम भारत के भीतर एक और पाकिस्तान को नहीं पनपने देंगे। आज सरकार बहुविध प्रयास कर उस आरक्षण की माँग के अनुरूप कदम उठाती जा रही है। क्या कारण है ? हमने कहा था कि अंग्रेज समाज की विविधता को नियमितता के रूप में उभारकर हमें बाँटने का प्रयास कर रहे हैं, ताकि हम आपस में लड़ते रहें और वे निष्कंटक राज करते रहें। हम आज क्या कर रहे हैं ? समाज को जहाँ-जहाँ भी विभक्त करने की गुञ्जाइश दिखायी पड़ती है, हम उसे अन्धकार से और अधिक प्रकाश में ला रहे हैं। हम कहते थे कि अंग्रेजों को अपनी सत्ता बचाने और भारतीय सम्पदा को लूटने के अलावा कोई सरोकार नहीं है; लेकिन हम क्या कर रहे हैं ? क्या जातीय, वर्गीय और क्षेत्र टकराव को वोट बैंक के लिए बढ़ावा नहीं दे रहे हैं और जो जितना अधिक सत्ता सम्पन्न है, वह उतना ही अधिक हमारी सम्पदा को लूट नहीं रहा है ? क्यों हम देश को आत्मगौरव प्रदान करनेवाली विरुदावलि को पाठ्यक्रमों से निकाल रहे हैं और उन निरर्थक पाठ्यक्रमों को अपना रहे हैं, जो अतीत के गौरव के प्रति हमें अन्धकार में रखनेवाली बन गयी है ?

किसी ने ठीक कहा है कि जो देश अपने पुरुषों के गौरवमय इतिहास से अज्ञान रहता है, वह अधिक दिन

स्वाधीन नहीं रह सकता। हमारे हाथ में राजनीतिक सत्ता है; लेकिन विश्व बैंक और विश्व मुद्रा कोष के सहारे उस पर नियन्त्रण अमेरिका और यूरोप के कुछ देशो का हो गया है, जो हमारी सत्ता सञ्चालन की दिशा तय करते हैं। हमें कश्मीर में होनेवाली घुसपैठ, देश-विरोधी हरकतों, वन्य-क्षेत्र में शस्त्र उठानेवाले नक्सलियों, संसद् पर हमला करनेवाले आतंकियों, विस्फोटों में हजारों जान लेनेवाले विदेशी और स्वदेशियों की हरकतों, लाखों की संख्या में दो दशक से भी अधिक समय से बेघर हुए कश्मीरी हिन्दुओं को क्या फिर भारत विभाजन के बाद पाकिस्तान से आये और कश्मीर में बस गये उन हिन्दुओं को आज तक नागरिकता का अधिकार न मिल पाने की कोई चिन्ता नहीं है। हत्यारों, लुटेरों के लिए मानवाधिकार की दुहाई देनेवालों की बढ़ती जमात, अपसंस्कृति को बढ़ावा देनेवालों का उत्साहवर्द्धन यह सब क्यों हो रहा है ? क्योंकि सत्ता का सञ्चालन मूल भारतीय अवधारणा के अनुरूप कर्त्तव्य-प्रधान होने के बजाय अधिकार के अतिरेक में डूबता जा रहा है; कथनी और करनी का अन्तर मिटता जा रहा है; पारदर्शिता की अवधारणा तार-तार हो गयी है। गान्धी ने भारत की आत्मा-अध्यात्म को अपने जीवन का स्वरूप प्रदान किया था। सबके साथ तादात्म्य के आचरण पर चले थे, जो उनके जीवन काल में ही कांग्रेस ने स्वीकार नहीं किया था और उनके जाने के बाद सन्तुष्टि और त्याग की भारतीय जीवन की अवधारणा को त्याग कर पाश्चात्य की भौतिक भूख को ईंधन प्रदान करनेवाली अवधारणा को नियोजन का आधार बनाया। कहा जाने लगा, हम बैलगाड़ी के युग से निकलकर जेट युग की ओर बढ़ रहे हैं, जो भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता का प्रचार करते हैं, वे भारत को मध्यकालीन बर्बर युग की ओर लौटाना चाहते हैं; उन्हें मध्यकालीन का संज्ञान यूरोप के मध्यकालीन युग का है, भारत का नहीं, जो दुनिया भर में सोने की चिड़िया कहलाता था। इतनी लूट और लुटेरों के बाह्य आक्रमणकारियों ने देश को उतना नहीं लूटा, जितना हमारे अपनों ने। राष्ट्रीयता की भावना को दकियानूसी प्रतिभा की अवधारणा बताकर अन्तरराष्ट्रीय को अपनाने की ओर बढ़ाने का प्रयास किया। इसलिए कि राष्ट्रीय भावना की प्रबलता से उन्हें अपनी सत्ता जाने का खतरा उसी प्रकार था और है जैसे अंग्रेजों को था। इस समय चौतरफा चर्चा यह होती है कि किसने कितना लूटा और हम जहाँ हैं, वहाँ कितना लूट सकते हैं ? स्वदेशी भाव तिरोहित हो गया, स्वावलम्बन की अवधारणा पर विश्व बाजार छा गया और हम स्वाभिमानशून्य होते गये। कोई भी देश अपनी प्रकृति से विपरीत आचरण कर स्वतन्त्र नहीं रह सकता। स्वदेशी, स्वावलम्बन और स्वाभिमान की त्रयी के सहारे ही राष्ट्र खड़ा हो सकता है। इसके लिए आवश्यक राष्ट्रभाव का जागरण, एक देश, अनेक जन, भाषा, वेष-भूषा, खान-पान आदि के बावजूद, विदेशी शासकों की हजारों वर्ष सत्ता के बाद भी इसलिए जाग्रत रहा; क्योंकि उसमें आत्म-विस्मृति नहीं हुई थी। वह अपने अतीत से जुड़ा हुआ था। सैकड़ों की संख्या में राज्य होते हुए भी देश एक था; क्योंकि हमने राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत रखा था। आज आत्म-विस्मृति के माध्यम को बढ़ावा देकर हमें स्वाभिमानशून्य बनाने की गति तेज की जा रही है। आवश्यकता है इस विनाश को रोकने की और जैसा डाक्टर केशव बलिराम हेडगेवार ने कहा था, यह तभी सम्भव है, जब हम अपने आचरण से ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करें। संघ ने यही भाव पैदा करने का प्रयास किया है; लेकिन जब द्रौपदी का चीरहरण हुआ, उस समय सद्आचरण, धर्मज्ञ लोग, जो भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य के रूप में उपस्थित थे, अपनी मान्यता के अनुरूप आचरण करते, तो ऐसा नहीं होता। विश्वामित्र ने आचरण के स्खलन से अपनी सम्पूर्ण जीवन की तपस्या से प्राप्त यश को खो दिया। स्वयं के जीवन से दूसरों को प्रभावित करने के संकल्प के साथ जिन्होंने तादात्म्य किया है, उनको अपने आचरण के बारे में दुराचारी आचरण करनेवालों से अधिक सतर्क होना पड़ेगा। यह बात उनको अन्ना हजारे के आन्दोलन के देशव्यापी प्रभाव से भी समझ लेना चाहिए। पदलिप्सा और पद पाने के अधिकार के अतिरेक में यदि वे भी डूबते-उतराते नजर आयेंगे, तो राष्ट्रभाव कैसे प्रभावी होगा ? □

– पत्रकारपुरम्, गोमतीनगर, लखनऊ (उ.प्र.)

वस्तु का उपयोग

– डॉ. श्याम मनोहर व्यास

एक बार पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के यहाँ खुदीराम बोस, जो कि एक क्रान्तिकारी नेता थे, पधारे। विद्यासागर ने उन्हें नारंगियाँ खाने को दीं। खुदीराम जी नारंगियों को छीलकर उसकी फाँकें चूस-चूसकर फेंकने लगे। यह देखकर विद्यासागर बोले– "देखो भाई ! इन्हें फेंको मत, ये भी किसी के काम आ जायेंगी।"

खुदीराम बोले– "इन्हें आप किसे देंगे ?"

विद्यासागर ने हँसकर कहा– "इन्हें आप खिड़की के बाहर रख दें और वहाँ से हट जायें, तो अभी पता लग जायेगा।"

खिड़की के बाहर उन चूसी हुई फाँकों को रखने पर कुछ कौए उन्हें लेने आ गये।

अब विद्यासागर ने कहा– "देखो भाई ! जब तक कोई पदार्थ किसी भी प्राणी के काम में आने योग्य है, तब तक उसे व्यर्थ नहीं फेंकना चाहिए। उसे इस प्रकार रखना चाहिए कि धूल-मिट्टी लगकर वह नष्ट न हो जाये और अन्य प्राणी उसका उपयोग कर सके।"

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने दीन-दुःखियों की सेवा करने के लिए अपना सर्वस्व दान कर दिया था। हर प्राणी की सेवा करना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे। □

– १५, पञ्चवटी, पो.– उदयपुर– ३१३००४ (राज.)

सैरन्ध्री

पुस्तक-परिचय

– आभा भारती

अपमान की/आक्रोश की/प्रतिशोध की आग में पल-प्रतिपल तिल-तिल जलती द्रौपदी के लिए एक वर्ष का अज्ञातवास, सैरन्ध्री बनकर काटना, ऐसा ही था जैसे मन में सदा से प्रज्वलित आग में घी डाल, भड़कती लपटों को सीने में सँभालकर रखना। द्यूतक्रीड़ा में कौरवों से हारने के पश्चात् पाण्डवों को बारह वर्ष के वनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास की सजा सुनायी गयी थी। अज्ञातवास की अवधि में पहचाने जाने पर, पुनः इस सजा की पुनरावृत्ति तय हुई थी। पाण्डवों के जीवन का यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कालखण्ड था, जिसके पश्चात् धर्म और अधर्म के मध्य युद्ध का आह्वान होना था। यही नहीं, चीरहरण के पश्चात् द्रौपदी द्वारा ली गयी प्रतिज्ञा को पूर्णता प्रदान करने का निमित्त भी था। दुःशासन के लहू से अपनी खुली केशराशि सँवारने की अडिग प्रतिज्ञा पाले द्रौपदी ने बारह वर्ष व्यतीत कर दिये थे। इस एक वर्ष के अज्ञातवास पश्चात् ही उसके संकल्प की पूर्णाहुति होनी थी। और भी अनेक महत्त्वपूर्ण कारकों की वजह से यह वर्ष मील का पत्थर था। सभी पाण्डवों को अपने मूलरूप त्याग राजकुमार से रंक बन, मत्स्य प्रदेश के महाराज विराट् के अधीन नाना कार्य करने थे। सभी के लिए यह बहुत दुष्कर था; किन्तु द्रौपदी के लिए, सम्राज्ञी से सैरन्ध्री बनना तो अत्यन्त मार्मिक था। सुदेष्णा का रूप-रंग निखारना, केश-सज्जा आदि का कार्य कर एक वर्ष व्यतीत करना, अप्रतिम सुन्दरी द्रौपदी के लिए अग्नि-परीक्षा का समय था। वह भी तब, जब विराटनगर में किसी भी स्त्री का शील सुरक्षित नहीं था। वहाँ के सैनिक व्यभिचारी थे। महारानी सुदेष्णा का सेनापति भाई कीचक स्वयं चरित्रहीन, स्वेच्छाचारी, व्यभिचारी था। महाराज विराट उसके सम्मुख लाचार थे। इसी एक समस्या के इर्द-गिर्द सशक्त उपन्यासकार नरेन्द्र कोहली की कलम अमिट हस्ताक्षर करती है।

सैरंध्री
लेखक- नरेन्द्र कोहली
प्रकाशक- वाणी प्रकाशन,
४६६५, २१-ए, दरियागंज,
नयी दिल्ली- ११०००२
वाणी प्रकाशन, अशोक राजपथ
(पटना कॉलेज के सामने),
पटना (बिहार)
पृष्ठ-१३०; मूल्य- रु. ७५.००

द्रौपदी की मानसिक स्थिति का अत्यन्त मार्मिक वर्णन व इस समस्या से उत्पन्न विभिन्न प्रश्न और उनके समाधान में संलग्न पाण्डवों का छद्म-रूप में सहयोग ही इस उपन्यास की पृष्ठभूमि है। हिन्दी की अग्रिम पंक्ति के साहित्यकार ऊर्ध्वगामी चेतना के धनी लेखक नरेन्द्र कोहली ने कभी कंक (युधिष्ठिर), कभी बृहन्नला (अर्जुन) तो कभी सैरन्ध्री अर्थात् द्रौपदी के मुख से ज्ञान की जो धारा बहायी है, उससे पाठकों का मन आप्लावित हुए विना नहीं रहता, श्रद्धा से भर-भर जाता है। कोहली जी की बहुआयामीय प्रतिभा किसी परिचय की मोहताज नहीं।

सामाजिक विद्रूपताओं, विडम्बनाओं, विसंगतियों को उकेरते हुए उनके समाधान के मार्ग भी इस कृति में इंगित हैं। राजा, सेनापति व सैनिकों के व्यवहार की कसौटी, सामान्य स्त्री के प्रति पुरुष के रवैये, नारी में निहित आत्मबल की अकल्पनीय ऊँचाई, अलौकिक प्रज्ञा, आत्मसम्मान हेतु सतर्कता, रौद्ररूप की पराकाष्ठा और उसकी क्षमाशीलता के संग अप्रतिम सौन्दर्य से उत्पन्न संकट का मर्मस्पर्शी, सजीव चित्रण नारी के अक्षुण्ण गौरव की रक्षा आज की सामान्य स्त्री के लिए भी यह कृति एक मार्गदर्शिका है।

प्रतिशोध की प्रबल ज्वाला द्रौपदी का नियतिवश सैरन्ध्री में रूपान्तरण अज्ञातवास के पूरे वर्ष ! रानी सुदेष्णा ने जैसे ही प्रथम परिचय के अवसर पर रक्षिकाओं द्वारा पकड़कर लायी गयी, खुले गन्दे केश व वेष, मलिन मुख वाली युवती से पूछा, 'कौन हो तुम?' आक्रामक हो द्रौपदी ने कहा– 'कोई भी होऊँ, पहले मुझे तुमसे यह पूछना है कि मुझे इस प्रकार पकड़कर क्यों लाया गया है, जैसे मैं कोई अपराधिनी होऊँ।' इसी क्रम में रक्षिकाओं के कहने पर यह स्त्री मुख्य मार्ग पर डोलती फिर रही थी, सैनिकों के अनेक बार कहने पर भी न तो हट रही थी, न ही भीड़ एकत्र करने का कोई कारण बता रही थी, उल्टे इसने उनसे झगड़ा किया और एकाध का तो मुँह ही नोच लिया। इस पर द्रौपदी बेझिझक निडर होकर बोली–

'मैंने तो मुँह ही नोचा है, यदि मेरे पति आस-पास होते, तो उन सैनिकों में से अनेक का वध अवश्यम्भावी था। क्या मत्स्यराज इसी प्रकार शासन करते हैं, जिसमें संकटग्रस्त किसी अकेली स्त्री को देखकर, राज्य के सैनिक उसे गणिका मानकर उसका अपमान करने लगते हैं और यदि वह स्त्री आत्मरक्षा में उनका प्रतिरोध करे, तो वह बन्दी बना ली जाती है ! संसार के किसी सभ्य समाज में ऐसा नहीं होता। यहाँ धर्मात्मा राजा मत्स्यराज का शासन है अथवा किसी राक्षस का ?

ऐसे ही अनेक प्रसंग हैं, जो द्रौपदी के असाधारण आत्मबल से युक्त मन की आग को समझने के लिए पर्याप्त हैं।

रानी सुदेष्णा को विश्वास दिलाना अत्यन्त कठिन था, फिर भी सैरन्ध्री ने रानी के मन में अपने लिए विश्वास ही स्थापित नहीं किया; वरन् अनेक तर्कों द्वारा सैरन्ध्री को उसकी ही शर्तों के साथ राजमहल में संरक्षण देना भी स्वीकार किया। भाषिक लचीलेपन के अवलम्बन से लम्बे समय तक चले इन संवादों को सम्मोहकता प्रदान कर द्रौपदी की असाधारण बौद्धिक प्रतिभा व क्षमता को प्रकट किया गया है।

सैरन्ध्री का कथन कि मैं पापपूर्ण जीवन व्यतीत करना नहीं चाहती। मैं भिक्षा पर निर्भर रहना नहीं चाहती। प्रभु ने मुझे सक्षम शरीर दिया है और मेरे हाथों में कला दी है। सैरन्ध्री का कार्य करूँगी और उसके प्रतिदान में आश्रय चाहूँगी। मुझे आपसे वरदान चाहिए कि मुझे अपने धर्म पर चलने की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी। मुझे आपका आश्वासन चाहिए कि आप मुझे अपने सिवाय किसी और की सेवा में नहीं भेजेंगी और मैं अपनी इच्छानुसार अवगुण्ठनवती रह सकूँगी। मेरी कला का सम्मान होना चाहिए। अतः मुझे एक कलाकार की प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए, दासी का स्थान नहीं। न मुझे किसी का उच्छिष्ट भोजन छूना पड़ेगा, न किसी के चरण।

कृति में सैरन्ध्री के चरित्र के इस आत्मसम्मानयुक्त सशक्त पहलू को बड़ी ही संजीदगी से चित्रित कर द्रौपदी की चरित्रगत संस्कारी विशेषताओं का सूक्ष्म परीक्षण किया गया है।

केशसज्जा में सैरन्ध्री किस सीमा तक निपुण थी, उसका प्रकृति प्रेमी, कवि हृदय कितना संवेदनशील था, इसकी बानगी लेखक ने बखूबी प्रस्तुत की है।

महारथी अर्जुन, बृहन्नला का रूपधर राजा विराट की पुत्री उत्तरा को नृत्य संगीत की शिक्षा देते हैं। अर्जुन ने एक कला सीखी थी और द्रौपदी ने दूसरी। कलाएँ तो दोनों ही हैं; किन्तु एक का सम्बन्ध शरीर से है और दूसरी का आत्मा से।

बृहन्नला और उत्तरा के संवादों द्वारा लेखक ने कला की जो गहन व्याख्या की है, वह अतुलनीय है। कला मूल्य की अपेक्षा नहीं करती। अपना साध्य वह स्वयं है। सच बृहन्नला उत्तरा से पूछता है– किसकी कामना करती हो उत्तरे ! संगीत की अथवा शान्ति की ? गायन की अथवा समाधि की? राजसभा में प्रशंसा की अथवा एकान्त में शान्ति की ? उत्कृष्ट स्वर की अथवा धन की ? संगीत की अथवा जो कुछ संगीत से उपलब्ध होता है, उसकी ?

तुम्हारा लक्ष्य संगीत है अथवा संगीत से प्राप्त होनेवाले पदार्थ अथवा उपलब्धियाँ। कलाओं से सब कुछ प्राप्त हो सकता है। यश भी, धन भी, काम भी। अब यदि कोई इन्हीं को पकड़कर बैठ जाये, कला को त्याग दे, तो उसकी कला की यात्रा वहीं पर समाप्त हो जाती है। यदि साधक मार्ग में मिला सब कुछ ईश्वर को समर्पित कर आगे बढ़ता चले, तो अन्त में वह कला उसे अपने शुद्ध रूप में प्राप्त हो जाती है, जो ईश्वर का ही एक रूप है। नृत्य में महादेव शिव स्वयं मिल जाते हैं। संगीत से माँ वीणापाणि स्वयं साक्षात् प्रकट हो जाती हैं; किन्तु उसके लिए साधक मार्ग की बाधाओं अर्थात् उपलब्धियों पर ही मुग्ध होकर मार्ग में न बैठ जाये। कला की साधना करनी है, तो अपनी आत्मा को कलुषित मत होने दो। मन को सदा स्वच्छ करते रहो। मन सात्विक नहीं होगा, तो कला से भी सांसारिक भोग ही मिलेगा। ईश्वर कदापि नहीं मिलेगा। अतः कला की साधना अपने चरित्र की भी साधना है।

महारानी सुदेष्णा का व्यभिचारी भाई, सेनापति कीचक नाना भाँति से द्रौपदी के सतीत्व को चुनौती देता है; किन्तु सैरन्ध्री जो जवाब देती है, वह समस्त नारी जाति के लिए आज भी अनुकरणीय है– तुम किसी और की पत्नी को कैसे उपदेश दे रहे हो कि वह अपने पति को त्याग तुम्हें स्वीकार कर ले; क्योंकि तुम उसे कुछ अधिक सांसारिक सुख देने में समर्थ हो। आर्य सेनापति ! संसार बल अथवा सत्ता से नहीं चलता है। यह धर्म से चलता है और नारी का नहीं पुरुष का भी धर्म यही है कि वह अपनी ही स्त्री के प्रति निष्ठावान् रहे। मेरे पति जैसे भी हैं, मैं उनके प्रति निष्ठावान् हूँ।

भयंकर दुष्कल्पनाओं में घिरी, विचलित मन से सैरन्ध्री अपने सखा कृष्ण का स्मरण करती है। सैरन्ध्री को लगा जैसे कृष्ण स्वयं उसके अन्तःकरण में बैठकर ही समझा रहे हों– क्यों भयभीत हो कृष्णे ! तुम्हारी जैसी सती नारी के तेज के सम्मुख कौन-सा आततायी ठहर सकता है ? तुम्हारा वेष बदला है; किन्तु तुम अब भी द्रुपदपुत्री कृष्णा ही हो, जो अग्निकुण्ड में से जन्मी थी। तुम्हारा तेज अद्वितीय है।

इस प्रसंग से नरेन्द्र कोहली जी ने द्रौपदी के मन में कृष्ण के प्रति अपार विश्वास उजागर किया है। वह विश्वास जो चीरहरण के समय ठसाठस भरी राजसभा में चमत्कार बन घटित हुआ था। इसी आत्म आलोक तले द्रौपदी आश्वस्त हुई। फिर भी कीचक की अभद्रता से क्षुब्ध होकर, द्रौपदी मन ही मन सोचती वस्त्र सँभालती, स्वेद से बरबतर, राजसभा में हाँफती पहुँचती है। कामुक कीचक पीछे-पीछे वहाँ भी पहुँच जाता है और राजा के सम्मुख ही उसके खुले केश खींचकर प्रहार करता है। सैरन्ध्री औंधे मुँह गिरती है...।

सैरन्ध्री का अपमान-आहत मन चीत्कार कर उठा, 'राजन्! धर्मप्राण राजा अपनी प्रजा का उसी प्रकार पालन करता है, जैसे कोई ममतामयी माँ अपने अबोध शिशु की रक्षा करती है, मैं आपकी प्रजा हूँ। अबला स्त्री हूँ। क्या कीचक को दण्डित करना आपका धर्म नहीं है ? मर्यादित द्रौपदी अपनी तेजस्विता का परिचय देते हुए कहती है– न्याय के सम्मुख छोटे और बड़े सब बराबर हैं। उसमें यह नहीं देखा जा सकता कि मालिनी एक सैरन्ध्री है और कीचक मत्स्यदेश का सेनापति। जो लोग ऊँचे पदों पर बैठे हैं, वे

धर्म और न्याय के विधान से मुक्त हैं क्या ? इस पर विचार किया जाना चाहिए महाराज !

इस हृदयविदारक स्थिति का वर्णन मानव मन को झकझोर देनेवाला है। हवनकुण्ड से पैदा हुई द्रुपद कन्या याज्ञसेनी या पाञ्चाली, सम्राज्ञी द्रौपदी या कृष्णा आदि नामों को एक साथ चरितार्थ कर देनेवाले इस प्रसंग से द्रौपदी की अतुलनीय, सहनशक्ति सम्पन्न, प्रत्युत्पन्न प्रज्ञा का पता चलता है।

इस अप्रिय घटना के समय राजा व अन्य मन्त्रियों के साथ युधिष्ठिर व वल्लभ भी वहाँ मौजूद थे। वल्लभ अर्थात् भीम क्रोधित होकर, मदमस्त कीचक को, राजा की आज्ञा की परवाह किये विना ही तत्क्षण उठाकर फेंक देता है; किन्तु कंक अर्थात् युधिष्ठिर अज्ञातवास भंग होने के भय से सैरन्ध्री को क्षमा का उपदेश देते हैं।

कंक के मुख से उपन्यासकार ने कुछ नीतिवाक्यों को उद्धृत किया है जो सनातन महत्त्व के साथ-साथ, धर्मराज युधिष्ठिर के व्यक्तित्व के अनुरूप हैं– धर्म की रक्षा केवल राजा का ही कर्त्तव्य नहीं है महाराज ! वह तो प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है और स्त्री की रक्षा करना तो प्रत्येक पुरुष का धर्म है। कर्त्तव्य का पालन न अधिकारों की अपेक्षा करता है और न पुकार की प्रतीक्षा। मृत्यु के पश्चात् शत्रुता निभाना धर्म नहीं है महाराज !

सैरन्ध्री के सौन्दर्य को दोषी मानते हुए द्रौपदी की सुन्दरता से भयभीत राजा उसको राज्य से निष्कासित करने का निर्णय करते हैं। इसका बहिष्कार करते हुए कंक प्रखरता से दूध का दूध, पानी का पानी करते हुए कहते हैं– उत्पात का कारण सैरन्ध्री के सौन्दर्य में नहीं, पुरुष की वासना में है। इसलिए नियन्त्रण उस मन और उसकी वासना का होना चाहिए, जो परस्त्री के रूप को देखकर अपना संयम खोता है।

वासना तो एक मनोविकार है। इसलिए वह मन में है। नारी के मन में हो अथवा पुरुष के मन में। राम के सौन्दर्य को देखकर यदि शूपर्णखा के मन में वासना जागी थी, तो दोष राम का था अथवा शूपर्णखा का ? सीता का रूप देखकर रावण के मन में वासना जागी, तो दोष किसका था– सीता के सौन्दर्य का अथवा रावण की वासना का ?

इसके बावजूद, राजा विराट सैरन्ध्री के सौन्दर्य से इतना आतंकित है कि वह उसे कीचक के शव के साथ जीवित जलाये जाने की आज्ञा दे देता है। छद्म-वेष में पाँचों पाण्डव, एक सौ पाँच सैनिकों का वध कर, सैरन्ध्री की रक्षा कर, पतिधर्म का निर्वाह करते हैं।

कंक ने कहा था– 'क्षमा सत्य है, क्षमा धर्म है।' द्रौपदी, रानी सुदेष्णा व राजा विराट सहित सबको क्षमादान करती है और उपन्यासकार, द्रौपदी को महिमा-मण्डित करते हैं।

हम आजीवन अपना प्रारब्ध ही भोगते हैं। वह कितना ही संघर्षमय क्यों न हो ? कितना ही कटु व कष्टकारी क्यों न हो ? किन्तु जीवन की उदात्तता, धन्यता, क्षमा में ही निहित है, वही अगले जन्म का सुदृढ़ आधार है। बृहन्नला व द्रौपदी के माध्यम से उपन्यासकार का यह सन्देश, पाठकों को ही नहीं, जन-जन को भी दिव्यता प्रदान करता रहेगा। □

– भारती भवन, लोहिया उद्यान, हाउसिंग बोर्ड कालोनी, सिविल वार्ड ७, दमोह (म.प्र.)

नेताओं के नाम पर

(जनक छन्द)

– कुँ. शिवभूषण सिंह गौतम 'भूषण'

नेताओं के नाम पर।
नफरत सी हो रही है,
इनके खोटे काम पर।।

जो होने थे जेल में।
वे संसद शोभा बने,
लोकतन्त्र के खेल में।।

लोकतन्त्र के नाम पर।
एकनिष्ठ है पारटी,
न्योछावर मादाम पर।।

राजतन्त्र में आस्था।
सिंहासन युवराज का,
राजतिलक की व्यवस्था।।

अच्छे-अच्छे बह गये।
निष्ठा में चूके चतुर,
दरकिनार दिग्गज भये।।

जो जितना मक्कार है।
आज देश में उसी का,
अन्धाधुन्ध व्यापार है।।

अधुनातन अवदान है।
चिन्दी-चिन्दी चरित है,
फिर भी व्यक्ति महान है।।

जितने ही पैबन्द हैं।
आज जीन्स के पैण्ट में,
उतने भाव बुलन्द हैं।।

– कमला कालोनी, छतरपुर– ४७१००१ (म.प्र.)

जीवन पथ को सरल, सुबोध बनानेवाला ग्रन्थ

– प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय

'गीता-परिक्रमा' का तृतीय खण्ड आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री के गीता-व्याख्यान यज्ञ की पूर्णाहुति है। इससे पूर्व, 'राष्ट्रधर्म' के सुधी पाठकों ने इसी स्तम्भ में, इस महाग्रन्थ के पूर्ववर्ती अन्य दो खण्डों से परिचित होने का पुण्य-लाभ किया है। उन्हें निश्चय ही यह स्मरण होगा कि अपनी बहुविध साहित्यिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक व्यस्तताओं के होते हुए भी शास्त्री जी ने कोलकाता के श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय के आत्मीय आग्रह पर ये विद्वत्तापूर्ण प्रवचन प्रबुद्ध श्रोताओं के सम्मुख दिये थे।

इस खण्ड में गीता के अन्तिम छह अध्यायों में निरूपित क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभागयोग, त्रिगुण-विज्ञान, पुरुषोत्तमयोग, दैवी और आसुरी सम्पदा का विभाजन, त्रिविध श्रद्धा और मोक्ष-संन्यासयोग पर आधृत १८ प्रवचन (३७वें से ५३ तक) समाविष्ट हैं। इस प्रकार, इस खण्ड में क्षेत्र (शरीर), क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा), पुरुष और प्रकृति, आत्म-दर्शन के विविध मार्गों, बन्धन के कारण सत्त्व, रजस् और तमस् रूप तीन गुणों, पुरुषोत्तम के स्वरूप, देवप्रकृति और असुर प्रकृति के प्राणियों की प्रवृत्तियों, उनके शुभाशुभ परिणामों, सात्विक, राजसी और तामसी व्यक्तियों की श्रद्धा तथा उनके विविध आहारों, तप, दान तथा ब्रह्म-निर्देश में तीनों प्रकार की श्रद्धाओं की भूमिका, संन्यास और फल-त्याग की सीमाओं, कर्म के हेतु, प्रेरक ज्ञान, प्रकार एवं कर्त्ताओं बुद्धि, धृति एवं सुख के तीन प्रकारों, अपने कर्मानुष्ठान से ही भगवत्प्राप्ति, ब्रह्मीभाव को प्राप्त व्यक्ति के लक्षणों तथा अन्त में प्रभु-शरणागति का विशद विवेचन सर्वग्राह्य शैली में किया गया है। गीता का यह अंश इसलिए अधिक महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि इसमें मनुष्यों में विद्यमान पारस्परिक भिन्नता की व्याख्या त्रिगुण-सिद्धान्त के आधार पर की गयी है। जब सभी प्राणियों में पञ्चमहाभूतों से निर्मित शरीर ही विद्यमान है, फिर सबकी प्रकृतियों, गुणों और प्रवृत्तियों में इतने अधिक अन्तर क्यों हैं ? कोई अधिक क्रोधी है और कोई बिल्कुल शान्त प्रकृति का। क्या मनुष्य की प्रकृति परिवर्त्तनीय है ? गीता इसके कारण रूप में आहारादि की भिन्नता को मानती है, जिसके कारण सब में पञ्चमहाभूतों की परिमाणात्मक भिन्नता भी है और वही उनके स्वभावों की भिन्नता में कारणभूत है। आहारादि के परिवर्त्तन से तमोगुणी व्यक्ति में भी सात्विक प्रवृत्तियाँ पनप सकती हैं।

गीता-परिक्रमा (खण्ड-३)
प्रणेता- आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री
प्रकाशक- श्रीबड़ा बाजार कुमारसभा पुस्तकालय, १-सी, मदनमोहन बर्मन स्ट्रीट, कोलकाता-७
मूल्य- ४०० रु., पृष्ठ- ४१६

(स्व.) शास्त्री जी की तत्त्व-विवेचन की शैली अत्यन्त सुबोध है, जिसमें विभिन्न मनीषियों की सदुक्तियों और घटनाओं के साथ अपनी तथा अन्य कवियों की काव्यपंक्तियों का समावेश कर उसे वे और भी रुचिकर बना देते हैं। गीतोक्त पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या वे परम्परागत निर्वचनात्मक ढंग से करते हैं और इस क्रम में शब्द के मूलार्थ तक पाठक (श्रोता) को पहुँचा देते हैं। उदाहरण के लिए 'क्षेत्र' का अर्थ शरीर है, यह तो गीता ही बतला देती है– 'इदं शरीरं कौन्तेय ! क्षेत्रम् इति अभिधीयते।' शास्त्री जी इससे आगे बढ़कर 'शरीर' की व्युत्पत्ति 'शीर्यते इति शरीरम्' (जो शीर्ण होता रहता है, वह शरीर) उठाते हैं तथा उसे 'क्षेत्रम्' की व्युत्पत्तियों ('क्षयात् क्षेत्रम्' तथा 'क्षयात् त्रायते'– जो नष्ट होता है, वह क्षेत्र है और जो नाश से बचाता है, वह भी क्षेत्र है) से मिला देते हैं। शरीर की छह अवस्थाएँ निरुक्त में उल्लिखित हैं– 'जायते' (पैदा होता है), 'अस्ति' (अस्तित्व में आता है), वर्धते (बढ़ता है), 'विपरिणमते' (विभिन्न परिणतियों को प्राप्त होता है, 'अपक्षीयते' (फिर क्षीण होने लगता है) और अन्त में 'विनश्यति' (नष्ट हो जाता है)। लेकन जब 'क्षयात् क्षेत्रम्' से आगे बढ़कर 'क्षयात् त्रायते' कहते हैं, तो उसका तात्पर्य है कि कोई भी साधना हो, वह भी शरीर के माध्यम से की जाती है, जैसा कि कालिदास ने कहा है– 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'। शास्त्री जी इस सन्दर्भ में 'साधनधाम मोच्छ कर द्वारा' (रामचरितमानस) को उद्धृत कर 'क्षयात् त्रायते' की पुष्टि परम्परा से करना नहीं भूलते।

दैनन्दिन जीवन के विविध प्रयोगों और प्रसंगों के द्वारा गीता के गम्भीर तत्त्वज्ञान को सरल-सुबोध बना देना इस ग्रन्थ की विशिष्ट उपलब्धि है।

निष्कर्ष यह कि यह ग्रन्थ न केवल पुस्तकालयों के लिए; अपितु प्रत्येक प्रबुद्ध व्यक्ति तथा परिवार के लिए पठनीय अध्ययनीय, मननीय और संग्रहणीय तो है ही, इसकी उपादेयता इस लिए भी बढ़ जाती है कि इसके परिशिष्ट में गीता के श्लोकों की अनुक्रमणिका भी सुलभ सन्दर्भ हेतु उपलब्ध है।

(श्रीमद्भगवद्गीता के इन प्रवचनों के तीनों खण्ड हर प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए अपने पुस्तक-संग्रह में रखना और यथावसर उनका अनुशीलन करते रहना अपने जीवन-पथ को प्रशस्त बनाये रखने हेतु अत्यन्त श्रेयस्कर होगा।–सम्पादक)

– बी–१/४, विक्रान्त खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ– २२६०१० (उ.प्र.)

चर्चित पुस्तक

जम्मू-कश्मीर समस्या : पारम्परिक दृष्टि से परे !

– हरिकृष्ण निगम

प्रारम्भ से ही कश्मीर से जुड़ी हर समस्या के साक्षी के रूप में और एक लम्बे समय तक सरकार के केन्द्रीय मन्त्री के रूप में डा. कर्ण सिंह जो कुछ भी कश्मीर के बारे में आकलन करते रहे हैं और विशेष कर जो कुछ उन्होंने तत्कालीन प्रधानमन्त्री को अपने निजी पत्रों में लिखा, उसके ऐतिहासिक महत्त्व को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। उनके शब्दों में एक सहृदय साहित्यकार एवं कलापारखी की आत्मा भी प्रतिध्वनित होती रही है। इसलिए उनके बहुआयामीय व्यक्तित्व से भी पाठकों का स्वतः परिचय होता है।

डा. कर्णसिंह, जो इन्दिरा गान्धी मन्त्रिमण्डल में मन्त्री थे, ने अपने वामपन्थी पत्रकार मित्र रोमेश थापर (इतिहासकार रोमिला थापर के बड़े भाई) से यह शिकायत की थी कि रोमिला थापर अपने इतिहास लेखन के अपने राजनीतिक एजेण्डा से 'भारत को नष्ट कर रही हैं।' कर्णसिंह देश के अतीत के विद्रूपीकरण और हिन्दू इतिहास के मिथ्याकरण से इतने व्यथित थे कि इस विषय पर उनकी रोमेश थापर से तकरार भी हो गयी थी। यह बात प्रधानमन्त्री को भी ज्ञात हो गयी थी। वस्तुतः कर्णसिंह की तरह एडवर्ड लूस और अनेक प्रख्यात विदेशी इतिहासकार भी इस बात की बाद तक पुष्टि करते रहे थे कि कर्णसिंह पहले बुद्धिजीवी थे, जो वामपन्थी इतिहासकारों की प्रकृति को बिल्कुल ठीक समझे थे।

कश्मीर एण्ड बियाण्ड १६६६-१६८४
सेलेक्ट करेसपाण्डेन्स बिटवीन
इन्दिरा गान्धी एण्ड करन सिंह
सम्पादक- जावेद आलम
प्रकाशक- पेंगुइन्स/वाइकिंग
पृष्ठ संख्या- ३६२; मूल्य रु.- ६६६

कदाचित् इसीलिए इस ग्रन्थ के प्रकाशन के तुरन्त बाद अंग्रेजी पत्रों में इस ग्रन्थ की समीक्षा करते हुए, लगता है कर्णसिंह के निजी विचार वामपन्थी लेखकों के गले नहीं उतरे। आदित्य सिन्हा नामक लेखक ने अपनी समीक्षा के पहले ही वाक्य में लिख डाला कि इससे अधिक 'बोरिंग' ग्रन्थ उन्होंने कभी नहीं पढ़ा। कुछ दूसरों ने भी इसी तरह की टिप्पणी कर डाली। पर वस्तुतः चूँकि यह देश के मानचित्र के जन्म से ही उस स्थान के एक अत्यन्त उत्तरदायी व्यक्ति के समानान्तर इतिहास से जुड़ा है, जो पाकिस्तान के कुटिल मन्तव्य और वहाँ पर पनपते अलगाववाद के जन्मदाताओं के एजेण्डे से भलीभाँति परिचित रहा है, उनके शब्दों को आज भी सहज पचा नहीं सकता है। यद्यपि पत्रों के इस संग्रह में अधिकांश पत्र विवादों से अलग रहने की भरसक कोशिश करते हैं। वे स्वयं जम्मू-कश्मीर के सदरे-रियासत रह चुके थे और राजपरिवार के पारम्परिक वर्चस्व और यश से परिचित थे। महाराजा हरिसिंह स्वयं सम्पूर्ण जम्मू और कश्मीर साथ-साथ गिलगिट आदि क्षेत्रों व तिब्बत आदि के देशाधिपति और नरेश कहलाते थे, जिसे ब्रिटिश भारत में भी डोगरा प्रभुत्व का क्षेत्र माना जाता था। यहाँ तक कि भारत के स्वतन्त्र घोषित होने के बाद भी २६ अक्तूबर, १६४७ को जब महाराजा हरिसिंह ने लिखित विलयपत्र और भारत अधिराज्य में सम्मिलित होने का घोषणा पत्र भेजा था, अपनी सम्प्रभुता को इस प्रकार इंगित किया था ..."अब मैं श्रीमान इन्द्रमोहन राजराजेश्वर श्री हरिसिंह जी जम्मू एवं कश्मीर नरेश तथा तिब्बत आदि देशाधिपति, जम्मू-कश्मीर राज्य का शासक, अपनी सम्प्रभुता का उपयोग करते हुए एतद्द्वारा भारत अधिराज्य में विलय हेतु अपने इस लिखित पत्र को कार्यान्वित करता हूँ तथा..."

जहाँ सदियों से डोगरा-शासन का समस्त क्षेत्र में प्रभुत्व था, चाहे उनके विरुद्ध घाटी में आन्दोलन हो या शेख अब्दुल्ला का आन्दोलन हो, उसको समर्थन और शह हमारे देश का कांग्रेस दल देता रहता था और नेहरू जी द्वारा शेख अब्दुल्ला को संरक्षण देने से जम्मू-कश्मीर से दूरी तभी बन गयी थी। जल्दी ही शेख की असली रणनीति का दिल्ली को आभास हो गया था और नेहरू जी को स्वयं अपनी गलती का अहसास होने से उसे नजरबन्द करना पड़ा था। पाकिस्तान किसी भी तरीके से जम्मू-कश्मीर को हथियाना चाहता था; पर बलराज मधोक, प्रेमनाथ डोगरा, राय बद्रीदास, जगदीश अब्रोल आदि शेख अब्दुल्ला की नेशनल कान्फ्रेंस और लार्ड माउण्टबैटन तथा पाकिस्तान की मिलीभगत जान चुके थे। सच तो यह है कि क़श्मीर के तत्कालीन प्रधानमन्त्री रामचन्द्र काक की अंग्रेज पत्नी के माध्यम से महाराजा हरिसिंह को भारतीय संघ में विलय होने से रोका जा रहा था। जो विफल तब हुआ, जब पाकिस्तानी सेना और कबाइलियों के आक्रमण ने महाराजा को पूर्ण व अन्तिम विलय का निर्णय लेने के लिए मजबूर किया था।

सन् १९५३ से ही शेख अब्दुल्ला की संशयात्मक भूमिका पर सारे देश के राष्ट्रवादी चिन्तित थे। जब भी घाटी के पण्डितों या डोगरा, गूजरों व लद्दाख क्षेत्र के बौद्धों की कोई माँग उठती थी, उसे स्वयं दिल्ली से चाहे स्वयं प्रधानमन्त्री हों या कांग्रेस दल, साम्प्रदायिक या प्रतिक्रियावादी या युद्धोन्मादियों की माँग कहते थे। यद्यपि डा. कर्णसिंह ने श्यामाप्रसाद मुखर्जी या बलराज मधोक प्रत्यक्ष सन्दर्भ नहीं दिया है; पर प्रधानमन्त्री इन्दिरा गान्धी को २३ नवम्बर, १९७० को उन्होंने शेख अब्दुल्ला १९५३ में जेल भेजे जाने के बाद उनके समर्थकों द्वारा बनाये गये 'प्लेबिसाइट फ्रण्ट' की जनमत संग्रह की माँग में देश-विरोधी तत्त्वों के बारे में साफ जिक्र किया है। हुर्रियत कान्फ्रेंस की अलगाववादी दृष्टि को वे शुरू से ही भाँप गये थे और इसलिए उन्होंने इन्दिरा गान्धी को इस खतरे की ओर सचेत भी किया था। उस समय इस चेतावनी को गम्भीरता से लिया गया होता, तो कश्मीर में पृथकतावादी ताकतों को हवा देने में पाकिस्तान सफल नहीं होता।

डा. कर्णसिंह किसी न किसी रूप में केन्द्र की सरकार से लम्बे समय तक जुड़े रहे। एक समय वे पर्यटन व नागरिक उड्डयन मन्त्री भी थे तथा कांग्रेसी सरकारों से नजदीकी से भी जुड़े थे। उनसे अधिक किसी को यह भलीभाँति ज्ञात नहीं होगा कि पण्डितों ने घाटी से किसी भय या आतंकवादी धमकियों के लिए रातोंरात पलायन नहीं किया था वे दशकों तक अपने हितों व अधिकारों के लिए आन्दोलन चलाते रहे थे और हर अवसर पर नयी दिल्ली और कश्मीर के कांग्रेसियों ने उनकी हर माँग को साम्प्रदायिक कहकर अलगाववादियों के हाथ इतने मजबूत कर दिये कि उन्हें वहाँ से खदेड़ दिया गया। वे घटनाक्रम जैसे समकालीन पत्र-पत्रिकाओं में भी विस्तार से आज भी पढ़ने को मिल सकते हैं और यह कटु सत्य आज भी सत्यापित कर सकते हैं। स्वतन्त्रता के बाद अगस्त, १९६७ में पहली बार कश्मीरी पण्डितों ने अपनी भेदभाव की शिकायतों पर आन्दोलन दिल्ली का ध्यान आकर्षित करने के लिए किया था। स्थिति विस्फोटक तब बनी, जब एक निर्धन कश्मीरी पण्डित की नाबालिग पुत्री परमेश्वरी का अपहरण कर एक मुस्लिम युवक ने उससे विवाह कर लिया था।

डॉ. कर्णसिंह

उस समय विधानसभा में जनसंघ के सदस्य शिवचरण गुप्त ने मुख्यमन्त्री गुलाम मोहम्मद सादिक से वचन लिया कि भविष्य में ऐसा नहीं होगा। यह आन्दोलन काफी उग्र था और जनसंघ के अध्यक्ष बलराज मधोक श्रीनगर पहुँच गये थे। उस समय दिल्ली में केन्द्र सरकार को झुकना पड़ा। यद्यपि पहले हिन्दू महासभा के अध्यक्ष प्रो. रामसिंह को भी उपेक्षा से देखा जाता था; पर कांग्रेस सदैव कश्मीर में चाहे श्यामाप्रसाद मुखर्जी हों या बाद तक बलराज मधोक या दूसरे नेता, उन्हें एक अव्यक्त दुर्भावना से देखते थे। १९५३ के घटनाक्रमों में जब नेहरू जी दूसरे सभी प्रमुख कश्मीरी नेताओं को साम्प्रदायिक और शेख अब्दुल्ला को सर्वाधिक विश्वासपात्र मानने पर भी हिरासत में लेने को बाध्य हुए, तब भी उनकी आँखें नहीं खुली थीं। प्रजा परिषद् के आन्दोलन की गूँज जम्मू से बाहर देश भर में थी; पर नेहरू जी उसे संकीर्ण कहने की रट नहीं छोड़ सके थे।

क्या कश्मीर समस्या के स्थायी समाधान की कुञ्जी सिर्फ पाकिस्तान के पास है ? नहीं ! शेष भारत की निगाह में यद्यपि कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है; पर कश्मीर के कुछ अलगाववादी तत्त्व, अन्तरराष्ट्रीय लाबियों के माध्यम से विवादित बनाये रखने में अपना हित देखते हैं। आज भी सारी समस्या उसी नीति का विस्तार है, जिसमें नेहरू जी ने इस विवाद को संयुक्त राष्ट्र संघ तक पहुँचा कर की थी। उन्होंने स्वयं राष्ट्रसंघ में अर्जी देकर द्विपक्षीय मसले को त्रिपक्षीय बनाया था। राष्ट्रसंघ के प्रतिनिधि सर ओवन डिक्सन के जनमत-संग्रह की योजना का भूत अभी भी अनेक अन्तरराष्ट्रीय लाबियों के माध्यम से पाकिस्तान पर जब-तब चढ़ता-उतरता रहता है।

इस ग्रन्थ को पढ़ने के बाद प्रत्येक पाठक को इस बात के लिए उत्सुक होना स्वाभाविक है कि ६ मार्च, १९३१ को जन्मे और लगभग पाँच दशकों की सक्रिय राजनीति के बाद स्वयं डा. कर्णसिंह अपने और अपने कश्मीर के बारे में क्या सोचते हैं ! आज भी वे भावुक व्यक्ति की तरह याद करते हैं कि 'जायवल सूर्यवंशी' कुल के वंशज के रूप में एक समय वे ऐसे सदरे-रियासत थे, जिसका क्षेत्र २२२,४४४ वर्ग किलोमीटर था और १९४७ में भारत में पूर्ण विलय होने के बाद भी वे २१ तोपों की सलामी पाने के हकदार रहे थे। उनका प्रिवी पर्स रु. १,०००,०० (एक लाख) निश्चित हुआ था। एक विचारक और साहित्य प्रेमी, चित्रकार, कलापारखी और पर्यावरण-विशेषज्ञ के रूप में भी वे विश्व-विख्यात हैं। उनका विवाह ५ मार्च, १९५० में मुम्बई में नेपाल के जनरल शमशेर जंग बहादुर राणा की पुत्री महारानी यशोराज्य लक्ष्मी देवी के साथ हुआ था। स्वतन्त्र भारत में जम्मू और कश्मीर के गवर्नर के रूप में और बाद में १९६७ की चौथी लोकसभा में १९७३ तक वे केन्द्रीय पर्यटन व नागरिक उड्डयन मन्त्री के रूप में केबिनेट के सदस्य थे। १९७१ में पाँचवीं लोकसभा और फिर १९७७ में छठवीं और फिर १९८० में सातवीं लोकसभा के सदस्य थे। वे केन्द्रीय स्तर पर स्वास्थ्य, परिवार-नियोजन, शिक्षा और संस्कृति-मन्त्रालय में भी मन्त्री पद पर रह चुके हैं।

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

देवता के पेड़

— सुदर्शन वशिष्ठ

पेड़ कुदरत का करिश्मा है। एक अजूबा है– पहाड़ पर पेड़ ऊँचा सीधा, समाधिस्थ योगी-सा। जो जितना ऊँचा है, उतना ही शान्त है। जितना पुष्ट है, उतना ही अहिंसक है। देवदार के पेड़ को ही लीजिये, एकदम टेढ़ी पहाड़ी पर भी सीधा खड़ा रहता है। सीधे ऊपर उठना, उठकर तने रहना पेड़ का स्वभाव है। ढलानदार पहाड़ी पर सीधा खड़ा रहता है पेड़ झण्डे-सा। हरी वर्दी पहने पेड़ लगता है पहरेदार। कभी लगता है झबरीला भालू। कभी तिलस्मी घाटी का एय्यार। कभी लगता है पेड़ एक कविता, चाँद से बातें करता, हवा से हाथ मिलाता।

पेड़ में जान है, यह तो साइन्सदानों ने अभी सोचा; किन्तु पिछड़े समझे जानेवाले पहाड़ के गाँवों में पेड़ को सदियों पहले से एक जिन्दा जीव समझा जाता है। पेड़ में जान है, नसें हैं, हड्डियाँ हैं।

किसी भी गाँव में पुराना पेड़ किसी बूढ़े बुजुर्ग से कम महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जाता। इससे कई कथाएँ जुड़ जाती हैं। फलाँ ने लगाया, फलाँ इसकी शाखाओं से झूलते थे, फलाँ इसके नीचे दोपहर की धूप में सोता था, फलाँ उसके नीचे दिन में ही दहल गया, फलाँ को शान्ति मिली। किसी की टहनी या खोखल में कोई देवता वास करने लगा है। किसी एकान्त पेड़ के नीचे से लोग सूर्य डूबने के बाद गुजरने से भय खाते हैं। वहाँ काली का वास है। वहाँ पहाड़िया या कोई अन्य देवता रहने लगा है। ऐसे पेड़ को काटा नहीं जाता। कभी मजबूरी में काटना पड़े, तो कई तरह के उपक्रम करने पड़ते हैं। पेड़ के कटकर गिरने पर ऐसा समझा जाता है कि वह जोर से चिल्लाया है। उसका आर्त्तनाद गाँव में दूर-दूर तक फैला है।

यह भी विडम्बना ही है कि लोहे की कुल्हाड़ी या दाँतों वाला आरा उसके विना मात्र लोहे का टुकड़ा है। उसकी टहनी लगने पर ही कुल्हाड़ी मार करती है, आरा चलता है। काटती है पेड़ को अपनी ही टहनी। वार पर वार सहता है पेड़। न बोलता है, न सिसकता है, न रोता है। गिर जाने पर एक बार चिंघाड़ता है। घटोत्कच की तरह जमीन पर गिरता है, तो आसपास के झाड़-झखाड़ों को तहस-नहस करता है।

पेड़ की मृत्यु पर जड़ें जिन्दा रहती हैं। जड़ें उसी गति से ताकत देती रहती हैं। ठूँठ में बार-बार कोंपलें आती हैं। हर वसन्त में पेड़ फिर ऊँचा उठना चाहता है। पेड़ की हत्या पर जड़ें जिन्दा रहती हैं कई दिन धरती के गर्भ में। बस तना दोबारा नहीं उगता।

परोपकारी हैं पेड़। जो कुछ उसके पास है, उसे बाँटता है। चाहे अपने पास कुछ रहे या न रहे। कहा भी है, "तरुवर फल नहीं खात है....।"

गाँव में कोई भी पेड़ मजबूरी में काटा जाता है। किसी के शादी-ब्याह पर, किसी की मृत्यु पर पेड़ कटता है। कभी घर बनाने के लिए भी पेड़ कटता है। अन्यथा पेड़ को काटना अच्छा नहीं माना जाता। जलाने के लिए जंगलों में इतनी लकड़ी गिरी पड़ी रहती है कि दिन रात आग जलाये रखें, तो भी खत्म न हो। जहाँ जंगल कम हैं, वहाँ झाड़ियाँ जलाकर काम चलाया जाता है। पशुओं के चारे से बची लकड़ियाँ जलाने के काम आती हैं।

किसी भी गाँव बस्ती का दृश्य दूर से देखें, तो जहाँ-जहाँ पेड़ों के झुरमुट दिखायी पड़ेंगे, वहाँ–वहाँ गाँव होगा। लोग अपने घर के आस-पास पेड़ उगाते हैं। जो पेड़ स्वतः उगे हैं, उन्हें काटा नहीं जाता। पेड़ों का अस्तित्व गाँव के होने का प्रतीक है।

हिमाचल प्रदेश के ऊपरी हिस्सों में देवता के मन्दिर के आसपास के पेड़ देवता के माने जाते हैं। कई जगह देवता के पूरे के पूरे जंगल हैं। देवता की आज्ञा के विना देवता का कोई पेड़ नहीं काटा जा सकता। यदि देवता के अपने लिए भी पेड़ चाहिए हो, मन्दिर बनाना है, सराय बनानी है, तो भी वह स्वयं पेड़ काटने की आज्ञा देता है। उसकी आज्ञा के विना पेड़ नहीं कट सकता। चाहे जंगलात महकमा आज्ञा दे दे।

एक बार नग्‍र के ऊपर चजोगी गाँव में जाना हुआ। गाँव शुरू होने से पहले ही मोहरू के पेड़ों का जंगल शुरू हो गया। लगभग अट्ठारह हजार मीटर की ऊँचाई पर बसे इस गाँव के चारों ओर मोहरू के पेड़ों का जंगल था। एक व्यक्ति ने बताया कि ये सब पेड़ देवता के हैं। गाँव के बीच देवता का मन्दिर है। कोई भी व्यक्ति इन पेड़ों को नहीं काट सकता। देवता पेड़ काटने की आज्ञा नहीं देता। बस, इनके पत्ते पशुओं को चारे के रूप में डाल सकते हैं। यदि कोई देवता की आज्ञा के विना पेड़ काट दे, तो अनिष्ट होता है।

इसी तरह कई स्थानों में देवता के अपने जंगल हैं। **मन्दिर के आसपास तो सभी देवदारु के पेड़ देवता के होते हैं। पुराने समय में तो देवता के नाम बहुत जमीन थी। उस जमीन के सारे पेड़ देवता के होते थे, तो देवता की आज्ञा के विना नहीं कटते थे। अब भी जहाँ-जहाँ देवता के पेड़ हैं, वे देवता की आज्ञा के विना नहीं कट सकते।**

ग्रामीणों द्वारा इक्का-दुक्का पेड़ काटने पर अन्तर नहीं पड़ता। यदि एक घर पाँच-दस सालों में एक-दो पेड़ काटता भी है, तो उससे कहीं ज्यादा लगाता भी है। एक घर के आसपास जमीन के अनुसार कम से कम दस पेड़ अवश्य होते हैं। ज्यादा जमीन हो तो सौ पेड़ भी हो सकते हैं। घर

में सभी को एक-एक पेड़ नाम से पता होता है। फलाँ पेड़ कौन-सा है, कब लगाया, कितना बड़ा हुआ है, लकड़ी अभी कच्ची है या पक्की बन गयी है, यह सब उन्हें ज्ञात होता है, भले ही वे वनस्पति विज्ञान के ज्ञाता न हों।

पेड़ कटते हैं एक षड्यन्त्र के तहत। जब जंगल माफिया सक्रिय होता है, तब पेड़ कटते हैं। इन लोगों का काम पेड़ काटना ही है, लगाना नहीं। ऐसे ये जंगल खत्म होते जाते हैं। एक पेड़ के बड़े होने में सालों इन्तजार करना पड़ता है; किन्तु काटने में समय नहीं लगता।

जहाँ जंगल कटे हैं, ग्रामीणों ने नहीं काटे। उन्हें इतनी जरूरत ही नहीं होती कि जंगल के जंगल काटे जायें। इन्हें काटने की जरूरत वाले लोग दूसरे हैं।

उधर जंगल उगानेवाले कहते हैं कि हर वर्ष हजारों पौधे लगाये जाते हैं। वन महोत्सव पर ही न जाने कितने पौधे लगा दिये जाते हैं। यदि पौधा-रोपण की संख्या या आँकड़े देखें जायें, तो धरती का कोई एक कोना या इञ्च भर जगह न बचे, जहाँ पौधा न बोया गया हो। ऐसे आँकड़े हर बरसात के बाद दिये जाते हैं।

पौधारोपण के बारे में एक अधिकारी ने मजेदार किस्सा सुनाया। एक सिरफिरे नेता एक बार बर्फ के मरुस्थल स्थिति में गये। उनके लिए जो घोड़े, तम्बुओं तथा खान-पान की व्यवस्था की गयी, वह किस्सा अलग है; किन्तु जिस आराम घर में वे ठहरे, उसके आँगन में पेड़ नहीं थे। वहाँ पेड़ उगते ही नहीं, तो होते कहाँ से। उन्होंने हुक्म कर दिया कि आराम घर के आसपास पेड़ होने चाहिए। बताया गया कि हजूर ! यहाँ पेड़ नहीं उगते। ऊँचाई बहुत ज्यादा है, तो बिदक गये और विदेशों के नाम गिनाने लगे। आखिर वन अधिकारी ने पेड़ों के पौधे उनके हाथों से वहाँ लगवा दिये। नेता जी चले गये। पेड़ तो उगने नहीं थे, अतः उनके रुखसत होते ही उखाड़ दिये गये। अगले साल वे फिर आ गये। शुक्र यह हुआ कि वहाँ अँधेरा होने पर पहुँचे। शाम को खाना खाते समय उन्हें अपने लगाये पेड़ों की याद आयी। अधिकारियों का माथा ठनका। वन अधिकारी भी कहाँ कम थे। सुबह ही जब वे उठे, तो चारों ओर पौधे लगे पड़े थे ! वन विभाग ने पौधों के आसपास ताजा खाद डाली थी। नेता जी ने जब पौधों के करीब जाने लगे, तो एक अधिकारी ने चेता दिया, हजूर वहाँ न जाइये। खाद ताजा-ताजा डाली है। यहाँ खाद में गन्दगी भी होती है। बदबू आयेगी।

शाम होने से पहले ही वे चले गये और शाम तक पौधे मुरझा गये। □

— अभिनन्दन, कृष्ण निवास, लोअर पंथा घाटी, शिमला— १७१००६ (हि.प्र.)

(पृष्ठ ४४ का शेष)

जम्मू—कश्मीर समस्या...

कैबिनट मन्त्री के स्तर पर डा. कर्णसिंह अमेरिका में भारत के राजदूत के रूप में भी १६६० में भेजे गये थे। बाद में वे १६६६ में राज्यसभा के सदस्य बने और आज तक दर्जनों विश्वविख्यात सामाजिक एवं धार्मिक संगठनों के अध्यक्ष भी रहे हैं, जिनमें एक वैश्विक हिन्दू-संगठन 'विराट् हिन्दू समाज' और 'टेम्पिल ऑफ अण्डरस्टैण्डिंग' के अध्यक्ष के साथ-साथ केन्द्रीय संस्कृत परिषद् की अध्यक्षता भी है।

डा. कर्णसिंह अपने पूर्वजों की समस्त बृहद् कश्मीर पर बनी प्रभुसत्ता को आज भी याद करते हैं। महाराजा गुलाब सिंह ने आधुनिक कश्मीर की राजसत्ता १८४६ में स्थापित की थी, जिनका जन्म अक्तूबर, १७६२ में हुआ था। वे जम्मू के राजा किशोर सिंह के पुत्र थे और अपने पिता के बाद, जिन्होंने १८४६ में पूरा कश्मीर, जिसकी सीमा तिब्बत तक थी जीत लिया था और जम्मू-कश्मीर के पहले देशाधिपति कहलाये। १८५७ में महाराजा रणवीर सिंह सिंहासन पर बैठे, जिनकी मृत्यु १२ सितम्बर, १८८५ को हुई थी। जब सर प्रताप सिंह १८८५ में राजा बने, ब्रिटिश सरकार उन्हें अत्यधिक सम्मान देती रही थी। 'मेजर-जनरल', 'हिज हाइनेस', 'ग्रैण्ड कमाण्डर आफ द एम्पायर ऑफ इण्डिया', 'कमाण्डर आफ द ब्रिटिश एम्पायर', 'इन्दर महिन्दर बहादुर सिपाह-ए-सल्तनत' आदि विशेषण उन्हें अंग्रेजों ने आधिकारिक रूप से दिये थे।

जब ३० सितम्बर, १८६५ में जम्मू में जन्में हरी सिंह १६२५ में गद्दी पर बैठे, तब उपर्युक्त 'सर' आदि उपर्युक्त विशेषणों के अलावा स्वयं ब्रिटिश उन्हें 'एच.एच., राजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराज सर हरीसिंह बहादुर इन्दर महिन्दर, सिपाह-ए-सल्तनत-ए-इंगलिशिया, तिब्बताधिपति और कमाण्डर-इन-चीफ, कश्मीर आर्मी' आदि कहते थे।

स्वाभाविक था कि राजनीतिक महत्त्व के इस महाराजा को समस्त क्षेत्रीय भूराजनीति को देखते हुए अपने महत्त्व का तो अहसास था ही साथ-साथ बाकी देश में आन्दोलन के दौरान हमारे नेताओं जैसे नेहरू और गान्धी जी की वितृष्णा, जो उनके प्रति थी, उसका भी उन्हें भान था। कांग्रेस शेख अब्दुल्ला और कश्मीर के महाराजा-विरोधी आन्दोलन को शह देकर उसे शंकाग्रस्त बना रही थी। यद्यपि इन्हीं कांग्रेसी नेताओं में दूसरी देशी रियासतों के प्रमुखों से भी अच्छे सम्बन्ध थे; पर कश्मीर के महाराजा के विरुद्ध वे बोलने में कभी हिचकिचाते नहीं थे। इन तथ्यपरक घटनाओं को नकारा नहीं जा सकता है। सम्पादक ने यद्यपि अपने समीक्षित ग्रन्थ को विवादों से दूर रखने की भरसक कोशिश की है; पर डा. कर्णसिंह के अपनी स्वयं की जीवनगाथा को इसे पढ़ते समय शायद अलग रखना कठिन होगा।

कुल मिलाकर यह ग्रन्थ ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, पठननीय और संग्रहणीय है। □

— ए–१००२, पञ्चशील हाइट्स, महावीरनगर, कान्दिवली (प.), मुम्बई— ४०००६७

व्यंग्य

नाम न लेने की मजबूरी

– सत्यनारायण भटनागर

आज के समाचारपत्रों में समाचार प्रकाशित हुआ, "रतन टाटा से दस वर्ष पूर्व किसी मन्त्री ने पन्द्रह करोड़ रुपये की रिश्वत माँगी थी।" बड़े-बड़े अक्षरों में प्रथम पृष्ठ पर समाचार छपा है। लोग आश्चर्य कर रहे हैं। जगह-जगह चर्चा है, भ्रष्टाचार की खबरें रहस्य बनकर छायी हुई हैं। ऐसा लगता है कि इस देश में जो कुछ होता है, वह किसी न किसी रूप में भ्रष्टाचार ही होता है। ऐसा लगता है जैसे भ्रष्टाचार के अतिरिक्त कोई मुद्दा है ही नहीं, यहाँ भ्रष्टाचार, वहाँ भ्रष्टाचार, कहाँ भ्रष्टाचार ! किसी से किसी की ईमानदारी की चर्चा करो, तो सामने वाला शक की निगाह से देखने लगता है।

आज सवेरे सवालीराम निवास पर आये, तो हमने चर्चा छेड़ी। कहा– "यार सवाली राम! भ्रष्टाचार का गुब्बारा फूलता ही जा रहा है। अब सोचो, भ्रष्टाचार के नाम पर पन्द्रह करोड़ की राशि टाटा से माँगी गयी थी, वह तो टाटा थे कि उन्होंने टाटा कर दिया। कुछ बोले नहीं।" हमने फिर कहा– "टाटा तो उस समय मौन रह गये। भले आदमी थे। हम जैसा होता, तो हल्ला मचा देता। बड़े आदमी की यही पहचान है। दाल में नमक जैसे भ्रष्टाचार तो चलता है। दूध में थोड़ा पानी मिला दो, तो पता ही नहीं चलता; पर यह तो हद हो गयी। पन्द्रह करोड़ हमने मुँह फाड़कर कहा, अपनी बत्तीसी दिखा दी।"

सवालीराम अपनी आदत के विरुद्ध मौन साधे बैठे थे। जैसे ही हम रुके, वे चालू हो गये। उन्हें हमारा ही इन्तजार था। वे अन्दर ही अन्दर घुट रहे थे। हमारे चुप होते ही बोले– "यार ! तुम भी फालतू छोटी–सी बात पर तिल का ताड़ बना रहे हो। सोचो उस बेचारे मन्त्री ने रुपये माँगे ही थे न, लिये तो नहीं न। अगर मन्त्री को रुपये दे दिये होते, तो भ्रष्टाचार कानूनी रूप से पूर्ण हो जाता। रुपये माँगने में कैसा भ्रष्टाचार ! जब तक रुपये दिये नहीं गये, भ्रष्टाचार की क्रिया पूर्ण हुई नहीं। माँगना कोई भ्रष्टाचार थोड़े ही है।"

सवालीराम की बात सुन हम दंग रह गये। हमने कहा– "भाई ! माँगने की क्रिया भ्रष्टाचार का प्रथम चरण है, दे देना दूसरा चरण होता है। अगर राशि दे देते, तो भ्रष्टाचार हो गया होता।"

सवालीराम हँसने लगे। बोले– "मेरे भाई ! यदि रुपये दे दिये होते, तो काम हो गया होता। फिर आज की तरह खबर बनती ही नहीं। हमारे देश में ही नहीं, दुनिया में लेन-देन चलता है। विना लिखा-पढ़ी के चलता है। विश्वास पर चलता है। रिश्वत का खेल दोनों पक्षों की सुविधा और लाभ के आधार पर खेला जाता है। इस खेल में बड़ी उदारता है। दोनों पक्ष लाभ में रहते हैं। कोई शिकायत नहीं करता। जब रुपये दिये ही नहीं, तो खेल प्रारम्भ ही नहीं हुआ। भ्रष्टाचार हुआ कहाँ ? हमारे देश में रोज हजारों लोग रिश्वत देते हैं। हजारों कर्मचारी, अधिकारी, राजनेता लेते हैं, कभी चर्चा नहीं होती। फाइल दौड़ती, भागती है, काम हो जाता है, दोनों पक्षों में प्रेम सौहार्द होता है। रिश्वत की कभी शिकायत होती ही नहीं। यह तो टाटा ने रुपये दिये नहीं, इसलिए हल्ला है।"

हमने कहा– भाई सवालीराम ! रिश्वत माँगी तो गयी, अब माँगना भी तो अपराध है।

सवालीराम मूड में थे। बोले– "किस पुस्तक में लिखा है अपराध ? हमारे मन्त्री जी तो माँगने की आदत से लाचार हैं। यदि वे माँगने की आदत छोड़ दें, तो मन्त्री बन ही नहीं सकते। सोचो, वे कभी आपके पास भी आये होंगे, माँगा होगा वोट, अब वोट माँगना उनकी आदत है। वोट न माँगें, तो चुनाव जीतेंगे कैसे ? अब वे वोट माँगते हैं, तो आप भी उनके सामने अपनी माँग रखते हैं, सौदा हुआ। वे जीत गये, आपकी माँग उन्होंने गुपचुप पूरी की या शासन से पूरी करायी, करायी न ? बताओ, क्या यह भ्रष्टाचार है ? वे विधायक बनकर समर्थन माँगते हैं, तब मन्त्री बनते हैं। यह माँगने की आदत उनकी बनी रहती है। माँगने में भ्रष्टाचार कैसा ?"

वे रुके, तो हमने कहा, "भाई सवालीराम ! वोट माँगने और समर्थन माँगने में भ्रष्टाचार नहीं है। वह तो उनका

अधिकार है, उसे आप रिश्वत कैसे कहेंगे ! रिश्वत की तो बात अलग है।"

सवालीराम ने कहा– "आप गलत हैं, माँगने के साथ कुछ देना पड़ता है। भिखारी भी कुछ माँगता है, तो मिलने पर आशीर्वाद देता है– "आपको हजार गुना मिले, हर भ्रष्टाचारी जब माँगता है, तो कुछ देता है। इस दुनिया में निःशुल्क कुछ नहीं मिलता। फिर आप माँगते किससे हैं, जिसके पास कुछ होता है। जिसके पास कुछ नहीं हो, उससे माँगकर आप क्यों कष्ट उठायेंगे।" वे रुके– फिर दो क्षण रुककर बोले– जब हम जवान थे, हमने एक युवती से उसका हाथ माँग लिया। अब बताओ क्या यह भ्रष्टाचार है, उसके पास हाथ था, खाली था। वह उसे देना चाहती थी, उससे हाथ माँगा जा सकता था, तो हमने माँग लिया। वह तैयार नहीं हुई, मुँह बनाकर चल दी; पर उसने इसकी चर्चा कभी नहीं की। हल्ला नहीं मचाया। अब मिलती है, तो मुस्कान दे जाती है।"

हमें गुस्सा आ गया। सवालीराम गलत उदाहरण दे-देकर बोर कर रहे थे। हमने कहा– "यार सवालीराम ! आज आपको हो क्या गया है, आप ऊटपटाँग उदाहरण दे रहे हैं। कहाँ पन्द्रह करोड़ की रिश्वत और कहाँ लड़की का हाथ।"

सवालीराम ने ठहाका लगाया। बोला– "अब विचार कीजिए, टाटा जैसे सम्मानित संस्थान से कोई लाख दो लाख माँगकर उन्हें अपमानित करने का साहस किसमें है ! भाल देखकर तिलक किया जाता है। मन्त्री भी कोई केन्द्र का होगा। ग्राम-पञ्चायत का मन्त्री होता, तो हजार-दो-हजार में सन्तुष्ट हो जाता। हरएक का अपना पाचन-तन्त्र है, हाथी को हाथी जैसा चाहिए, चींटी को कण ही काफी है। हवाई जहाज में उड़ने के लिए माँग भी हवा जैसी होनी चाहिए। जो हो तो भारी; पर दिखायी न दे। अब आप सोचिए, टाटा जैसा उदार व्यक्ति भी रिश्वत माँगने पर न तब बोला और न अब नाम बता रहे हैं। वे उसी युवती जैसे चुप हैं, जिससे मैंने हाथ माँगा था। पन्द्रह करोड़ की कसक तो उनके अन्दर है, पर नाम न बता पाने की सज्जनता अभी भी शेष है। इसे क्या कहेंगे, क्या यह रिश्वत, भ्रष्टाचार के विरुद्ध जंग है ? जब तक भ्रष्टाचार को खुली चुनौती न होगी, तब तक भ्रष्टाचारी में भय आयेगा कहाँ से ? माँगनेवाले माँगते रहेंगे, देनेवाले देते रहेंगे और यह आपसी प्यार का खेल चलता रहेगा।"

मैंने कहा– "भाई सवालीराम ! यह प्यार का खेल नहीं है, यह भय का खेल है। 'पानी में रहकर मगर से वैर कौन् ले' वाली बात है। अब नाम बताने से होगा क्या ? अब तो सिर्फ जगहँसाई शेष रह गयी है।"

□

– २, एम.आई.जी., देवरा देवनारायण नगर,
रतलाम– ४५७००१ (म.प्र.)

व्यंग्य

लुटेरों का संकट

– उमेश चन्द्र सिंह

देश भर के सम्भ्रान्त लुटेरे, जेबकतरे और उठाईगीर राजधानी में आये हुए हैं। यहाँ इनकी एक संयुक्त सभा आयोजित की गयी है। आज की सामाजिक स्थिति में लुटेरों एवं इनके कुलीन साथियों की समस्याओं पर विचार-मन्थन चल रहा है। इस सभा में यह लोग अपनी-अपनी समस्याएँ प्रस्तुत कर रहे हैं। फूलों से सजे मञ्च पर धुरन्धर चोर, लुटेरे अध्यक्ष एवं मुख्य व विशिष्ट अतिथि का आसन शोभायमान कर रहे हैं। सभा का सञ्चालन एक जेबकतरे द्वारा किया जा रहा है। सञ्चालक ने तारीफों के पुल बाँधते हुए एक अधेड़ लुटेरे को मञ्च पर आमन्त्रित किया। सभी ने उसका करतल ध्वनि से स्वागत किया।

अधेड़ वक्ता ने सभी गणमान्य लुटेरों का अभिवादन करते हुए अपना वक्तव्य शुरू किया– "भाइयो ! जमाना बहुत खराब आ गया है। घोर कलियुग है, ऐसा पहले कभी नहीं हुआ, जो आज हो रहा है। हमारा इतिहास साक्षी है कि हम चोरों, लुटेरों का वर्चस्व हर शासन में रहा है, चाहे वह मुगलकाल हो या अंग्रेजों का शासन। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के जमाने में तो शासन की बागडोर ही लुटेरों के हाथ में थी। वह लुटेरों का स्वर्णिम युग था। आज हम लुटेरों का सबसे बुरा कालखण्ड है। आज हमारा समाज बहुत निकृष्ट स्थिति में पहुँच गया है। आम जनता तो वैसे ही गरीबी झेल रही है और सरकार महँगाई बढ़ाकर लोगों को लूट रही है। हमें लूटने का मौका ही कहाँ मिलता है ! इसके अलावा जिन लोगों ने दलाली, भ्रष्टाचार, घूसखोरी और घोटाले करके पर्याप्त जमा-पूँजी इकट्ठी कर ली है, उन तक पहुँचना ही मुश्किल है। वे अपनी सुरक्षा के लिए कुत्ते पाले हुए हैं और कुत्तों की देखरेख करने के लिए आदमी पाले हैं। जो प्रथम श्रेणी के नेता और अधिकारी हैं, उन्होंने तो पुलिस को पाल लिया है। ऐसे में भला हम लूटें, तो किसे लूटें और कैसे लूटें। यही आज की प्रमुख समस्या है। इसके बाद भी एक आध छीन-झपट या लूट करें भी, तो उसमें पुलिस को सहयोग राशि देनी पड़ती है। आप सभी लोग इस समस्या पर अपने विचार एवं समाधान प्रस्तुत करें।

इसके बाद अगले वक्ता को आमन्त्रित किया गया। वह कुछ भावुक किस्म का था, बोला– "आज लोगों का चारित्रिक पतन हो चुका है। आजकल झूठ, बेईमानी और मक्कारी इस हद तक बढ़ गयी है कि हम लुटेरों के साथ भी धोखाधड़ी होने लगी है। मैं ऐसी ही एक घटना का भुक्तभोगी हूँ। पिछले दिनों मुझे सच्चाई पर विश्वास करके जेल यात्रा करनी पड़ी। हुआ यों कि मैं एक मोटे सेठ के यहाँ चोरी करने के लिए घुसा। चौकीदार और कुत्ते को रिश्वत देकर पटा लिया। तिजोरी वाले कमरे में पहुँचा और तिजोरी तोड़ने की सोच ही रहा था कि मेरी नजर तिजोरी पर लगे एक पर्चे पर गयी, जिस पर लिखा था तिजोरी खोलने के लिए इस पर लिखे नम्बरों में एक, शून्य, शून्य (१००) दबायें। मैंने नम्बर दबा दिये और तिजोरी खुलने का इन्तजार करने लगा। तभी तिजोरी खुलने के बजाय वहाँ पुलिस आ गयी और मैं धर लिया गया। उस दिन से मेरा सच्चाई पर से विश्वास उठ गया। ऐसे में हम लोगों की अस्मिता पर संकट आ गया है। आप विद्वज्जन इस पर भी विचार करें।

इसके बाद आये वक्ता महोदय ने अपने संस्मरण सुनाये। बोले, "हम लोग जान जोखिम में डालकर अपना काम करते हैं। हर समय पकड़े जाने व पिटाई का खतरा बना रहता है और लोग हैं कि टुच्चई दिखाते हैं, तब क्रोध आता है। लोग अपने बटुए में दस-बीस या पचास रुपये से अधिक लेकर नहीं चलते। उनके पर्स में बेकार के कागज भरे रहते हैं। आजकल लोग ए.टी.एम. कार्ड लेकर भी चलते हैं। ऐसे में मेहनत करके किसी की जेब काटो, तो उसमें पैसे कम बेकार के कागज अधिक निकलते हैं, तब मन करता है ऐसे कनचपुए को पकड़कर थाने में बन्द करा दें। भला यह भी कोई बात हुई। पहने हुए सूट-बूट हैं और जेब में बीस रुपये निकले।

अगला वक्ता एक व्यथित हृदय का था। बोला– भाइयो! आजकल आदमी तो आदमी, औरतें भी हमें धोखा देने लगी हैं। वह शादियों, पार्टियों में नकली जेवर पहनकर जाती हैं और दिखावा करती हैं जैसे चौबीस कैरट सोने का जेवर पहने हों। पिछले दिनों मैंने अपने साथी के साथ रेलवे स्टेशन पर एक भद्र महिला के गले से सोने का हार उड़ाया।
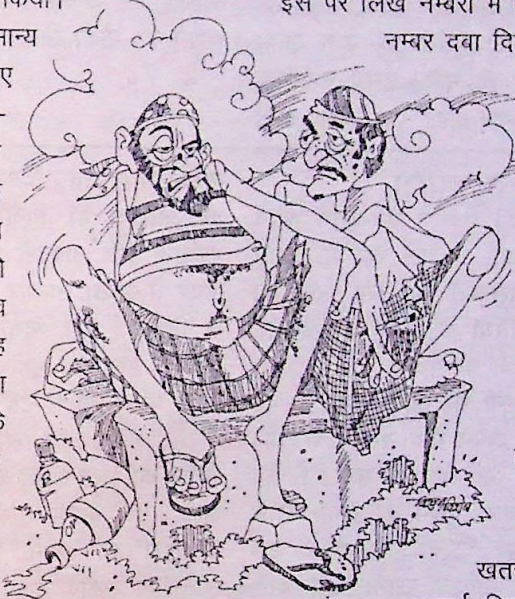
बाहर निकलकर सर्राफे वाले को दिखाया, तो वह नकली निकला। बहुत गुस्सा आया। हम लोग फिर स्टेशन पर गये, संयोग से वह महिला अपने पति के साथ स्टेशन पर ही बैठी मिल गयी। हम लोगों ने महिला से तो कुछ नहीं कहा, उसके पति को एक ओर ले जाकर उसकी आंशिक ठुकाई की और हार उसके मुँह पर फेंकते हुए कहा, तुझे शर्म नहीं आती, अपनी औरत को नकली हार पहनाकर घूमता है। खबरदार, अगर दुबारा नकली हार पहनाये मिल गया, तो तेरे हाथ-पैर तोड़ दूँगा। वह शर्मिन्दा हो गया। गनीमत यह रही कि उसने हार खींचने की रिपोर्ट थाने पर नहीं की, नहीं तो पुलिस का हिस्सा अपनी जेब से देना पड़ता। अब आप लोग ही सोचिए, आज के समाज में आदमी कितनी धूर्तता पर उतर आया है। आदमी में कुछ असली रहा ही नहीं। हमारे महापुरुष कह गये हैं कि आदमी को अन्दर-बाहर एक जैसा होना चाहिए। ऐसे में हमें समाज में ऐसा वातावरण बनाना पड़ेगा कि लोग असली चीजें ही उपयोग में लायें। आप लोग इस समस्या पर भी विचार करें।

इस प्रकार अनेक वरिष्ठ, गरिष्ठ और कनिष्ठ वक्ताओं ने अपने विचार रखे। अन्त में सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित हुआ कि सभी लुटेरे, जेबकतर, चोर-उचक्के और उठाईगीर आपस में एकता, अखण्डता और सम्प्रभुता को बनाये रखेंगे। साथ ही गीता के नीति-वाक्य का पालन करते हुए हम सभी अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहेंगे, फल की चिन्ता नहीं करेंगे। फल इस समय हमारे नेताओं और अफसरों के पास हैं, किसी दिन हमें भी फल चखने का मौका मिलेगा। □

– १०२, केशव नगर कालोनी,
शाहजहाँपुर– २४२००१ (उ.प्र.)

(पृष्ठ ३० का शेष) **अभिशप्त त्याग**

अलग ही खिचड़ी पका रहा था। उसका प्रेम-प्रसंग अपने कार्यालय की एक महिला सहकर्मी से चल रहा था। उसी से कोर्ट-मैरिज कर ली और निर्लज्जों की तरह पत्नी को लेकर घर आया। विषम परिस्थितियों के झेलने की अभ्यस्त शालिनी इस जहर के घूँट को भी पी गयी।

सेवानिवृत्ति के पश्चात् भी मुन्नी घर आती रही। दो वर्ष पश्चात् वह भी सेवानिवृत्त होकर अपने गाँव चली गयी। अब तो अकेलापन शालिनी के लिए अभिशाप हो गया। विनोद को अपनी उस दीदी का सुख-दुःख पूछने का समय ही न मिलता, जिसने अपने सुखों को तिलाञ्जलि देकर उसे पाला-पोसा था। उसकी पत्नी,, अवश्य खाना बना देती, शायद इसलिए कि राशन-पानी का प्रबन्ध दीदी ही करती थी। शेष सारा काम वह स्वयं करती।

सोचती, मैंने अपने अन्तर्मन की इच्छाओं को दबाया। इन लोगों की सुख-सुविधा के लिए अपना घर नहीं बसाया। मैं वस्तुतः अपूर्ण हूँ। नारी की पूर्णता तो उसके मातृत्व में निहित है। अपने अपूर्णत्व को महिमामण्डित करते हुए कृत्रिम जीवन जिया। सब व्यर्थ, यह तो मनश्छल था।

नहा-धोकर शालिनी गीले कपड़े फैलाने छत पर जा रही थी। बरसात का मौसम, सीढ़ियों पर काई जमी थी। अर्थराइटिस की मरीज, पैर न सँभला और लुढ़ककर नीचे आ गयी। यह तो कहिये महरिन उस समय बर्तन साफ कर रही थी। दौड़कर उठाया और पलंग पर लिटा दिया। रोने-कराहने की आवाज सुनकर सामने के राठौर साहब आ गये। तत्काल अपनी गाड़ी से अस्पताल पहुँचाया। एक्स-रे में बायें हाथ और दाहिने पैर में फ्रैक्चर निकला। ऑपरेशन करके प्लास्टर चढ़ा दिया गया। ऑपरेशन के समय अस्पताल की अधीक्षक डॉ. विनीता भी उपस्थित थीं। उन्होंने उन्हें पहचाना और डाक्टरों से कहा, "ये हमारी गुरु हैं, इनका अच्छे से अच्छा उपचार किया जाये।" सातवें दिन अस्पताल से डिस्चार्ज कर दिया गया और डेढ़ महीने बाद फिर बुलाया। इस बीच मुहल्ले के कई लोग हालचाल लेने गये; किन्तु पति-पत्नी विनोद को समय न मिला।

डेढ़ महीने बाद प्लास्टर खुला। सब ठीक रहा; लेकिन मरीज की अस्त-व्यस्त दशा देखकर डॉ. विनीत का जी भर आया। गन्दे कपड़े, उलझे बाल। वह सब कुछ समझ गयी। प्रिंसिपल को अपना परिचय दिया और कहा, "आपने अतिरिक्त कक्षाएँ लेकर हम चार लड़कियों को पढ़ाया था, उसी की बदौलत हम सब का पी.एम.टी. में चयन हो गया।"

विनीता ने एक नर्स को बुलाया और आदेश दिया कि डॉ. नटराजन का आवास कल खाली हुआ है। मेरी गुरु जी को उसमें रहने की व्यवस्था करो। इस अस्पताल को विनीता की सास ने खुलवाया था। शाम को डॉ. विनीता परिसर स्थित अपने गुरु के आवास पर गयी। सब मनोनुकूल। चलते समय कहने लगी, यह आवास अब सदा के लिए आपका है। हाँ, एक और निवेदन, मैं जानती हूँ, आप आवास में मुफ्त नहीं रहना चाहेंगी अतः स्वस्थ होने पर आप अस्पताल के एकाउण्ट का नित्य दो घण्टे निरीक्षण कर लिया करें।'

प्रिंसिपल शालिनी अकेले में बुदबुदायीं, "हे ईश्वर ! अद्भुत है तेरी लीला। और आँखें बन्द कर ध्यानस्थ हो गयीं। □

– द्वारा श्री एस.डी. पाण्डेय, सी ३६४, सावित्री सदन,
राजाजीपुरम्, लखनऊ– २२६०१७ (उ.प्र.)

भारत विभाजन का सच (६)

हिन्दू-जागरण को कैसे दबाया गया

– रामगोपाल

सन् १९४७ में हिन्दू जागरण की लहर और हिन्दू राज्य की माँग तीव्रता से उठी थी और यह भी कि उस समय जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस की संसदीय पार्टी में अल्पमत में थे। अब हम देखेंगे कि कैसे हिन्दू जागरण को दबाया गया कि आज उसका चिह्न भी अलभ्य है।

शीर्षस्थ महापुरुषों को कम से कम एक साल पहले ही विभाजन की सम्भावना दिख रही थी। स्वयं गान्धी जी इससे अनभिज्ञ नहीं थे। अप्रैल, १९४७ में जब लॉर्ड माउण्टबैटन ने उनसे विभाजन का विकल्प पूछा, तो उनका उत्तर था, "समस्त भारत की सत्ता जिन्ना को सौंप दो।" यह कांग्रेस कार्यकारिणी को स्वीकार्य नहीं था। फिर क्यों गान्धी हिन्दू जनता को विभाजन न होने देने का आश्वासन देते रहे, जिसके कारण हिन्दू सोते रहे और विभाजन की घोषणा होने पर गाजर-मूली की तरह काटे गये ? यह भी एक शोध का विषय है।

हिन्दू-राज्य का प्रस्ताव और हिन्दू नेतृत्व की भ्रामक सोच

विभाजन की घोषणा ३ जून, १९४७ को हुई, जिसके अनुसार मुसलमानों को उनका मनचाहा पाकिस्तान तथा हिन्दुओं को शेष हिन्दुस्तान प्राप्त हो गया। **५ जून को, एक सुप्रसिद्ध उद्योगपति ब्रजमोहन बिरला ने तत्कालीन गृहमन्त्री सरदार पटेल को इस आशय का पत्र लिखा कि धार्मिक आधार पर हुए विभाजन के कारण यह उचित होगा कि भारत को हिन्दू राज्य बनाया जाये, जिसमें शासकीय व्यवस्था हिन्दू आदर्शों (हिन्दुत्व) पर आधारित हो। पटेल ने यह सुझाव यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि हिन्दुस्थान में बहुत से मुसलमान तथा अन्य अल्पसंख्यक समुदाय होंगे, जिनकी सुरक्षा भारत सरकार की प्रमुख जिम्मेदारी होगी,** (पी.एन. चोपड़ा और प्रभा चोपड़ा की पुस्तक, 'सरदार पटेल-मुस्लिम्ज एण्ड रिफ्यूजीज' (अंग्रेजी), पृ. ५, कोणार्क पब्लिकेशंज, मेन विकास मार्ग, दिल्ली– ९२)। इस प्रसंग से प्रमाणित होता है कि **कांग्रेस में हिन्दुत्ववादी माने जानेवाले सरदार पटेल भी हिन्दू धर्म, हिन्दू राष्ट्रवाद और हिन्दू राज्य के भेदों को नहीं जानते थे। वे भी यह नहीं देख पाये कि तमाम गैरइस्लामी राज्यों में एकाधिक धार्मिक या नस्ली अल्पसंख्यक बसते हैं; किन्तु उन राज्यों की सम्प्रभुता (Sovereignty) विभाजित नहीं होती; वह बहुसंख्यक जनता अथवा उनके प्रतिनिधियों के पास होती है; उन राष्ट्रों और राष्ट्रों के नाम, उनके शासकीय सिद्धान्त बहुसंख्यक जनता की भाषा, संस्कृति, धर्ममत और जीवनमूल्यों के अनुरूप होते हैं। छह सौ वर्षों तक जब भारत की राजसत्ता मुख्यतः तुर्कों, अफगानों अथवा मुगलों के पास थी और उन मुसलमान शासकों ने अपनी हिन्दू प्रजा पर 'जजिया' नामक धार्मिक कर लगा रखा था, तब भी कई क्षेत्रों में हिन्दू राज्य था; किन्तु हिन्दू शासकों ने अपनी मुसलमान जनता पर, बदले की भावना से भी कोई धार्मिक या अन्य भेदकारक कर नहीं लगाया था। ऐसे हिन्दू राज्यों में दक्षिण भारत का विजयनगर साम्राज्य, मध्य और पश्चिमी भारत में शिवाजी व पेशवाओं द्वारा स्थापित कई मराठा राज्य तथा महाराजा रणजीत सिंह शासित पंजाब प्रमुख थे।** उल्लेखनीय है कि जहाँ विश्व के अन्य भागों में सर्वपन्थ समभाव का सिद्धान्त एक आधुनिक उपलब्धि है, वहीं हिन्दू भारत में प्राचीन काल से ही इस सिद्धान्त का पालन हो रहा है; किन्तु इन सब तथ्यों को कांग्रेस की इस अवधारणा के नीचे दबा दिया गया कि महात्मा गान्धी के प्रादुर्भाव से पहले भारत एक राष्ट्र था ही नहीं तथा गान्धी के नेतृत्व में ही भारत हिन्दुओं, मुसलमानों, सिखों, ईसाइयों, पारसियों आदि के मिले-जुले राष्ट्र के रूप में उभर रहा है। इसी अवधारणा के अनुरूप ही महात्मा गान्धी को नेहरू ने 'राष्ट्रपिता' बना दिया।

नेहरू की मुस्लिमपरस्ती और हिन्दू-विरोध

सत्ता-हस्तान्तरण के पहले से ही, जवाहरलाल नेहरू हिन्दू जागरण की लहर से कितने क्षुब्ध थे ! सत्ता-प्राप्ति के बाद उनकी हिन्दू-विरोधी और मुस्लिमपरस्ती का एक अन्य प्रमाण यहाँ प्रस्तुत है। नेहरू के प्रधानमन्त्रित्व काल के प्रारम्भिक कैबिनेट के एक वरिष्ठ मन्त्री श्री नरहरि विष्णु गाडगिल (एन.वी. गाडगिल) ने अपनी पुस्तक 'गवर्नमेण्ट फ्रॉम इनसाइड' (मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, १९६८) में लिखा है, "मैं पहले ही बता चुका हूँ कि **कैसे योजनापूर्वक पाकिस्तान ने अपने यहाँ से हिन्दुओं और सिखों को मारा और बाहर खदेड़ दिया और कैसे बंगाली मुसलमानों को (भारत के) असम प्रान्त में घुसाकर कई प्रदेशों में अधिकार कर लेने को प्रेरित किया। भारत सरकार ने इस ओर देखा तक नहीं। दूसरी ओर, एक बार जब सरदार वल्लभभाई पटेल ने हिन्दुओं और मुसलमानों की परस्पर आबादी बदलने और पाकिस्तान तथा हिन्दुस्थान के बीच आबादी के अनुपात में धरती बाँटने का सुझाव दिया, तो नेहरू बिगड़ पड़े; किन्तु यह मानना पड़ेगा कि इस प्रकार आबादी की अदला-बदली आगे जाकर लाभदायक ही होती।** हमारा देश सर्वपन्थ समभावी है और सर्वपन्थ समभाव में हमारी पूर्ण

आस्था है, तथापि परिस्थितियों के अनुसार इसमें कुछ संशोधन करना आवश्यक है। विभाजन के बाद भी कुल मिलाकर, मुसलमान भारतीय जीवन की मुख्यधारा से अलग-थलग ही रहते आये हैं और लगभग सभी जिलों में साम्प्रदायिक मुस्लिम संगठनों ने अपना विषैला प्रचार जारी रखा। पाकिस्तान जा चुके हजारों मुसलमान वापस आ गये हैं और उन्हें उनकी जायदादें वापस दे दी गयी हैं। हिन्दुओं को कहीं भी ऐसा न्याय नहीं मिला।"

नेहरू को प्रधानमन्त्री बनाने का छल

यह तो सर्वविदित है कि सत्य और अहिंसा की **जगप्रसिद्ध प्रतिमूर्त्ति महात्मा गान्धी ने तत्कालीन कांग्रेस के महामन्त्री आचार्य कृपलानी के माध्यम से षड्यन्त्रपूर्वक सरदार पटेल का पत्ता काटकर जवाहरलाल नेहरू के लिए स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री का रास्ता बनाया। आचार्य कृपलानी को बाद में इसका बहुत खेद हुआ। सुप्रसिद्ध पत्रकार दुर्गादास को कृपलानी ने कहा, "(गान्धी के लिए) मैंने यह पाप किया। यह मेरा दोष है। इसके लिए पटेल ने मुझे कभी माफ नहीं किया। वह एक दृढ़प्रतिज्ञ और दृढ़निश्चयी व्यक्ति था। उसका यह गुण समय के साथ पक्का होता गया... पटेल में चाहे जो कमियाँ रही हों, वह एक महान् नेता, प्रशासक और संगठनकर्त्ता था।'** दूसरी ओर, जवाहरलाल भी कृपलानी के प्रति कृतज्ञ नहीं रहे।

क्यों किया गान्धी ने यह पापकर्म ?

नेहरू के लिए गान्धी ने यह पापकर्म क्यों किया या करवाया ? इसका उत्तर बहुतों ने बहुत तरह से दिया है। कांग्रेस कार्यसमिति के ही अधिकांश सदस्य नेहरू के प्रति गान्धी के अद्भुत लगाव से असन्तुष्ट थे; पर उनके सामने मुँह खोलने का उनमें साहस नहीं था, तथापि कई सदस्यों ने अलग-अलग दुर्गादास को यह बात कही और अवसर पाकर दुर्गादास ने गान्धी जी से कहा। गान्धी मान गये कि कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में पटेल मुस्लिम लीग के नेताओं और ब्रिटिश राज के प्रतिनिधियों से अधिक प्रभावशाली ढंग से बात कर सकता था और कांग्रेस को संगठित रखने का काम भी। फिर भी गान्धी बोले कि वे चाहते हैं कि नेहरू ही सरकार की अगुवाई करे। दुर्गादास ने इस विरोधाभास का कारण पूछा, तो गान्धी जी ने उत्तर दिया : "मेरे कैम्प में जवाहरलाल ही एक अंग्रेज है।" दुर्गादास को और अधिक उलझन में देखकर वे बोले, "बात यह है कि जवाहर कभी भी नम्बर दो का स्थान ग्रहण नहीं करेगा। हिन्दुस्तान के बाहर, पटेल की अपेक्षा जवाहर अधिक जाना जाता है। अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में नेहरू भारत की भूमिका निभायेगा। सरदार पटेल भारत के आन्तरिक मामलों की देखभाल करेगा। इस प्रकार दोनों व्यक्ति भारत सरकार रूपी गाड़ी के दो बैलों की जोड़ी की तरह काम करेंगे। एक को दूसरे की आवश्यकता होगी और दोनों साथ काम करेंगे।'[2] गान्धी का यह तर्क उनके अन्ध-भक्तों को ही भा सकता है। वास्तविकता यह है कि यहाँ भी गान्धी ने असत्य भाषण किया ! सभी इतिहासकार जानते हैं कि एकमात्र मुस्लिम तुष्टीकरण को छोड़कर, जवाहरलाल नेहरू प्रत्येक विषय पर गान्धी से भिन्न राय रखते थे। गान्धी ग्रामोत्थान, पञ्चायती राज, कृषि, कुटीर उद्योग को वरीयता देते थे, तो जवाहर शहरीकरण और उद्योगीकरण को हिन्दुस्तान की सब बीमारियों का इलाज मानते थे। गान्धी आत्मा-परमात्मा की बात करते थे, तो नेहरू आत्मा-परमात्मा को मानते ही नहीं थे। हाँ, **दोनों ही इस देश में छद्म-रूप से इस्लामी राज्य लाना चाहते थे। दोनों के विश्वस्त मित्र और सलाहकार कट्टरपन्थी मुसलमान या हिन्दी-हिन्दू विरोधी हिन्दू थे। दोनों ही हिन्दुत्ववादियों को दूर रखते या उन्हें अलग होने पर विवश करते थे।** उदाहरण के तौर पर (सन् १९४७ से पहले), स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय, पं. मदनमोहन मालवीय, (१९४७ के बाद) सरदार पटेल, राष्ट्रीय स्वयंसेवक

संघ के सरसंघचालक श्री गोलवलकर (गुरुजी), सुप्रीम कोर्ट के पूर्व जज मोहम्मद हिदायतुल्ला, जो एक बार भारत के उपराष्ट्रपति भी बने थे, मुम्बई हाईकोर्ट के पूर्व जज मोहम्मद भाई करीम भाई छागला, जो कुछ वर्षों तक केन्द्र में शिक्षामन्त्री और विदेशमन्त्री भी थे, आदि !

मौलाना आजाद के कांग्रेस में आने के उद्देश्य के बारे में हम पहले ही लिख आये हैं। इतना और जोड़ दें कि मौलाना ने 'दारुल् इर्शाद' नाम का एक मदरसा, (इस्लामी शिक्षा केन्द्र), चला रखा था, जिसमें वे स्वयं अपने विद्यार्थियों को यह पढ़ाते थे, "कुरान ने मुसलमानों को किसी अन्य की प्रजा बनकर रहने की मनाही की हुई है। भारत जैसे देश को, जो एक बार मुसलमानी शासन में रह चुका है, को फिर से जीतने का जी-तोड़ प्रयास मुसलमानों को करना ही चाहिए... यह बड़े शर्म की बात है कि १० करोड़ मुसलमान यहाँ दासता में रह रहे हैं।" यही मनोभाव कांग्रेस के अन्य मुसलमान नेताओं यथा हकीम अजमल खाँ, मौलाना मुहम्मद अली व शौकत अली, मौलाना हसरत मोहानी, बैरिस्टर आसफ अली आदि का भी था। अनेक हिन्दुत्ववादी भी, जो आज भी गान्धी का गुणगान करते हैं, इन तथ्यों को जानते नहीं या जानकर भी अनदेखी करते हैं।

सत्ता-हस्तान्तरण और नयी चुनौतियाँ

१५ अगस्त, १६४७ को खण्डित भारत की राजसत्ता विधिवत् जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस सरकार के पास आ गयी। उस समय देश के सामने दो मुख्य समस्याएँ थीं– (१) विभाजन के कारण पाकिस्तान से विस्थापित हुए हिन्दू–सिखों को भारत में बसाना तथा बदले में भारतीय मुसलमानों को पाकिस्तान भेजना और (२) राजे-महाराजों और नवाबों के शासन में रह रहीं ५६३ देसी रियासतों का नये भारत में विलीनीकरण। दोनों में से किसी विषय में नेहरू की रुचि नहीं थी। नेहरू ने अपनी रुचि का तीसरा काम ढूँढ निकाला। वह था– हिन्दू, हिन्दी और हिन्दुत्व की जड़ें खोदना और कट्टरपन्थी मुस्लिम पक्ष को सशक्त करना, जिसमें वह जी-जान से लग गये। परिणाम यह हुआ कि जिस काम में भी नेहरू ने हाथ डाला, वही बिगड़ा। हाँ; हिन्दू, हिन्दी और हिन्दुत्व को नष्ट करने में वह अवश्य बहुत हद तक सफल रहे और उसी अनुपात में मुस्लिम और ईसाई वर्चस्व में वृद्धि हुई। इस काम में नेहरू ने अपनी सहायता के लिए भारत में रह गये मुस्लिम लीगी नेताओं, पत्रकारों, शिक्षाविदों और कम्यूनिस्टों को अपने साथ जोड़ लिया। शिक्षा, इतिहास लेखन, स्कूलों व कालेजों के पाठ्यक्रम-निर्धारण, सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन आदि में जहाँ तक सम्भव हुआ, इन्हीं की नियुक्तियाँ की गयीं। शिक्षा और सांस्कृतिक मन्त्रालय को सदैव किसी मुसलमान अथवा हिन्दू-हिन्दी विरोधी गैर-मुसलमान के नेतृत्व में रखा। साथ-साथ नेहरू का व्यक्तिगत एजेण्डा था कि जोड़-तोड़ कर प्राप्त राजसत्ता को वंशानुगत बनाना, जिसे बाद में उनकी बेटी इन्दिरा गान्धी ने पक्का किया। इस सब के चलते एक अपवाद अवश्य हुआ। वह था गुजरात में सोमनाथ मन्दिर का उद्धार। यह पहला महान् हिन्दू मन्दिर था, जिसे कुख्यात इस्लामी आक्रमणकारी महमूद गजनवी ने १०२५ ई. में ध्वस्त किया था। सोमनाथ के उद्धार का यह महान् कृत्य सरदार पटेल की अगुवाई में कांग्रेस के हिन्दुत्ववादी पक्ष ने किया। इन्होंने पहले महात्मा गान्धी को राजी किया, फिर जवाहरलाल नेहरू को मानना ही पड़ा। संयोग से सरदार पटेल और कन्हैयालाल माणिक लाल मुनशी भी गान्धी की तरह गुजराती मूल के थे; किन्तु नेहरू उसके बाद सतर्क हो गये और सन् १६४६ में उत्तर-प्रदेश के अयोध्या में स्थित श्री रामजन्म भूमि पर बनी मस्जिद व ज्ञानवापी में विश्वनाथ जी के मूल स्थान पर प्राचीन मन्दिर का उद्धार नहीं होने दिया और आज भी वह विवाद के घेरे में हैं।

विकलांग लोकतन्त्र

– डॉ. रामनिवास 'मानव'

विश्व का सबसे बड़ा
लोकतन्त्र कहकर
हम जिस पर इतराते हैं
जिसके गुण गाते हैं,
आरक्षण और तुष्टीकरण की
बैसाखियों पर टिका
महान् भारत का
यह विकलांग लोकतन्त्र
कितने कदम बढ़ा पायेगा,
यह वर्त्तमान नहीं,
भविष्य ही बता पायेगा।

– ७०६, सेक्टर– १३, हिसार– १२५००५ (हरियाणा)

दिल्ली में दंगे

ऐसे वातावरण में सितम्बर, १६४७ के प्रथम सप्ताह में भारत की राजधानी दिल्ली में भीषण मुस्लिम दंगे हुए। इसका आधिकारिक वर्णन वी.पी. मेनन ने अपनी पुस्तक 'ट्रान्सफर आफ पावर' के १६वें अध्याय में दिया है। मेनन लिखते हैं कि पहली घटना २१ अगस्त, १६४७ को एक मुस्लिम मोहल्ले में घटी, जब विज्ञान के मुसलमान विद्यार्थी के घर में एक बम फटा। माना गया कि वह बम बना रहा था। कुछ दिनों बाद पुरानी दिल्ली के दीवान हाल के पास, जहाँ पश्चिमी पाकिस्तान से आये शरणार्थियों को ठहराया जा रहा था, छुरेबाजी की पहली घटना घटी। उसके बाद यह अफवाह फैली कि मुसलमानों द्वारा नयी दिल्ली में नयी-नयी बनी सरकार को उखाड़कर मुस्लिम

सरकार स्थापित करने की योजना है। (लेखक, जो उस समय ११वीं का विद्यार्थी था और वर्त्तमान शिवाजी स्टेडियम के पास राजा बाजार के एक सरकारी मकान में रहता था, ने भी यह अफवाह सुनी थी और यह कि इस योजना के अन्तर्गत ५ या ६ सितम्बर को पड़नेवाली जन्माष्टमी के दिन सामूहिक सशस्त्र आक्रमण होना था, जबकि सारे हिन्दू व्रत और पूजा-पाठ में व्यस्त होते। प्रतिक्रियास्वरूप पाकिस्तान से आये पंजाबी शरणार्थियों ने कुछ स्थानीय हिन्दुओं से मिलकर १-२ दिन पहले ही प्रत्याक्रमण की योजना बना डाली। लेखक का पड़ोसी, इण्टेलीजेन्स ब्यूरो (केन्द्रीय गुप्तचर विभाग) में कार्यरत था और काफी दिनों से सुन्नत कराकर मुसलमानी वेष में ईदगाह में रह रहा था। कुछ महीनों बाद जब वह मिला, तो उसने इस अफवाह की पुष्टि की।) मेनन के अनुसार ४ सितम्बर को प्रातः करोल बाग की एक हिन्दू बस्ती में बम फटने के साथ ही सारे शहर में व्यापक रूप से दंगों का आरम्भ हो गया। शुरू में गोली-बारूद का प्रयोग नहीं हुआ; किन्तु ७ सितम्बर को कुछ मुसलमानो ने कुछ हिन्दुओं को आग्नेय शस्त्रों से मार गिराया। इसने आग में घी का काम किया। दंगों ने और उग्र रूप धारण कर लिया। मुस्लिम बस्तियों में कुछ मकान तो पक्के किले बन गये थे, जिनमें तमाम गोला-बारूद, बन्दूकें-पिस्तौलें और वायरलेस सेट तक थे। बहुत से हथियार, गोलाबारूद तो बाद में कब्रों को खोदकर निकाले गये। साधारण पुलिस बल में ५० प्रतिशत और सशस्त्र पुलिस बल में ७५ प्रतिशत मुसलमान थे, जिनमें अधिकांश पाकिस्तान जाने की तैयारी में थे और शेष घर बैठ गये। ऐसे में सशस्त्र फौज को तैनात किया गया, जिनमें लेफ्टिनेण्ट कर्नल शरीफ के नेतृत्व में मद्रास रेजीमेण्ट की चौथी बटालियन प्रमुख थी। ७ सितम्बर की रात में नयी दिल्ली के मकानों की छतों से पुरानी दिल्ली के अनेक स्थानों पर लाल-लाल बादल और उठता हुआ धुआँ दिखायी देता था। सैकड़ों हिन्दुओं ने अपने मुसलमान पड़ोसियों को सुरक्षा प्रदान की और उन्हें शरणार्थी शिबिरों तक पहुँचाया। लेखक ने अपने घर की छत से कई दिनों तक रात में मेनन द्वारा वर्णित यह दृश्य देखा तथा गोले और गोलियों की आवाजें सुनीं, जो फौजियों और तुर्कमान गेट, अजमेरी गेट, क्षेत्रों में मुस्लिम आबादी में किला बने घरों द्वारा एक-दूसरे के प्रति चलाये जा रहे थे।

इस बीच लार्ड माउण्टबैटन १० दिन की छुट्टी लेकर सपरिवार शिमला गये हुए थे। मेनन कहते हैं कि दिल्ली की गम्भीर स्थिति देखकर, सरदार पटेल की अनुमति से माउण्टबैटन को फोन से तुरन्त दिल्ली आने का आग्रह किया और वे दिल्ली आ गये। लेखक समझता है कि एक भारतीय नौकरशाह, वह भी हिन्दू, इतनी बड़ी जिम्मेदारी स्वयं अपने ऊपर नहीं ले सकता था। अवश्य ही यह काम जवाहरलाल ने पटेल और मेनन द्वारा करवाया होगा ! इसे छोड़ें ! अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'फ्रीडम एट मिडनाइट' (अध्याय १३) में लेखकद्वय डोमिनिक लैपियर और लैरी कॉलिन ने ४ सितम्बर की रात में मेनन और शिमला स्थित माउण्टबैटन के बीच हुई टेलीफोन पर बातचीत और ६ सितम्बर को वायसराय हाउस नयी दिल्ली में माउण्टबैटन की नेहरू-पटेल के साथ हुई चर्चा का आलंकारिक ढंग से विस्तृत विवरण दिया है। संक्षेप में बुरी तरह प्रताड़ित, विषादग्रस्त स्कूली बच्चों की तरह नेहरू और पटेल सहमे हुए माउण्टबैटन के आगे जा खड़े हुए। उन तीन के अलावा वहाँ कोई अन्य व्यक्ति न था! कानून और व्यवस्था की दशा पंजाब में पहले ही बेकाबू थी। पाकिस्तान से इधर और भारत से उधर जानेवालों की संख्या अनुमान से कहीं अधिक थी। अब हिंसा का ताण्डव दिल्ली को लीलने को तैयार था ! नेहरू ने कहा, "हम नहीं जानते, इस स्थिति को कैसे सँभालें ?"

माउण्टबैटन : "आपको इसे वश में करना तो होगा ही।"

नेहरू : "हम क्या करें ? हमें कोई अनुभव नहीं है। हमने अपने जीवन के स्वर्णिम वर्ष आपकी ब्रिटिश जेलों में बिताये हैं। हमारा अनुभव तो आन्दोलन खड़े करने में है, प्रशासन में नहीं। हम तो शान्तिकाल में भी बनी-बनायी सरकार ही चला सकते हैं। यह तो असाधारण आपत्तिकाल की स्थिति है। आपको प्रशासन का बहुत अच्छा अनुभव है। आप ही देश की नैया पार लगा सकते हैं।"

बात आगे बढ़ने पर माउण्टबैटन ने यहाँ तक कह दिया कि उन्होंने कुछ ही दिन पहले तो भारतीयों को सत्ता सौंपी थी और नेहरू-पटेल इतनी जल्दी उसी सत्ता को वापस देना चाहते हैं, यदि बाहर यह तथ्य किसी को पता चले, तो उन दोनों का तो राजनैतिक भविष्य ही चौपट हो जायेगा ! अन्ततः माउण्टबैटन खण्डित भारत की बागडोर फिर से सँभालने को इन तीन शर्तों पर तैयार होते हैं– "हम तीनों की यहाँ हुई वार्ता किसी अन्य को नहीं जायेगी, (२) आप दोनों मुझे कैबिनेट की आपातकालीन कमेटी बनाने की प्रार्थना करेंगे और मैं मान जाऊँगा, इस कमेटी के सदस्य मैं अपनी सुविधानुसार नामित करूँगा, (३) बैठकों में प्रधानमन्त्री (नेहरू) मेरी दायीं ओर तथा उपप्रधानमन्त्री (पटेल) बायीं ओर बैठेंगे। प्रत्येक प्रस्ताव पर मैं आप दोनों की तरफ अनुमोदन के लिए देखूँगा और आप दोनों विना हील-हुज्जत के 'हाँ' कहोगे।" नेहरू और पटेल तत्काल मान गये। उसी समय १५ मिनट के भीतर आपातकालीन कैबिनेट कमेटी का गठन हो गया और उसी दिन सायं ५ बजे उसकी बैठक रख दी गयी।

माउण्टबैटन ने किस प्रकार दिल्ली ही नहीं, सारे खण्डित भारत की विस्फोटक स्थिति सँभाली, यह यहाँ प्रासंगिक नहीं है। यहाँ इतना कहना पर्याप्त है कि आपातकालीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए माउण्टबैटन ने सैनिक शक्ति द्वारा भारतीय मुसलमानों को पाकिस्तान भेजने का हिंसात्मक आन्दोलन दो सप्ताहों में बिल्कुल दबा दिया और पहली अक्तूबर तक सभी

मुसलमान शरणार्थी अपने-अपने घरों को सुरक्षित भेज दिये। जो पाकिस्तान जाना चाहते थे, उन्हें पाकिस्तान के रास्ते डाल दिया।

यहाँ पर महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि नेहरू और पटेल ने (मेनन के द्वारा ही सही), माउण्टबैटन को बुलाया ही क्यों ? क्या नेहरू और पटेल पाकिस्तानी नेताओं और अधिकारियों से गये बीते थे ? वास्तविकता यह है कि पाकिस्तान की समस्या भारत की समस्या से कहीं अधिक जटिल थी; क्योंकि उसके पास न नयी दिल्ली की तरह कार्यालयों के लिए विशाल सरकारी भवन थे, न सैकड़ों बँगले, कोठियाँ, न बैरकें, न माउण्टबैटन जैसा कुशल गवर्नर (जनरल) ! वहाँ तो मुस्लिम लीग का अध्यक्ष मुहम्मद जिन्ना ही गवर्नर जनरल, भारत से गये मुस्लिम लीगी नेता ही मन्त्री तथा दिल्ली से गये सरकारी अफसर थे, जिनकी स्वयं की स्थिति शरणार्थियों की ही थी। फिर भी उन्होंने अपनी हिन्दू-मुस्लिम समस्या ऐसे हल कर ली कि आज उसका नामोनिशान नहीं है। वहाँ की वर्त्तमान समस्या आपस में स्वयं मुस्लिमों की ही है, जो ईशनिन्दा कानून और शरीयत-इस्लामी-कानून की विरोधी व्याख्याओं से उपजी है। उसी से उपजा आतंकवाद है। **दूसरी ओर भारत है, जहाँ १९४७ से पहले की ही मुस्लिम समस्या आज और भी उग्र रूप में सामने खड़ी है; क्योंकि आज भारत के मुसलमानों को पाकिस्तान तथा अनेक अन्य सम्पन्न मुस्लिम देशों से प्रतिवर्ष अरबों-खरबों रुपयों की आर्थिक सहायता व अन्य सामग्री प्राप्त हो रही है, जिससे वे अनगिनत मस्जिदों और मदरसों (इस्लामी शिक्षा केन्द्रों) के बनाने; पैन-इस्लामी अलगाववादी साहित्य का प्रचार-प्रसार करने, आन्दोलनों को खड़ा करने में खर्च करते हैं। इसके अतिरिक्त स्वयं भारत सरकार और राज्य सरकारें हजारों करोड़ की धनराशि उनके अनेक प्रकार के शैक्षिक, धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक उत्थान के लिए खर्च करती हैं। उनको तथा ईसाइयों को दी जानेवाली सुविधाओं और अधिकारों पर एक पूरी पुस्तक लिखी जा सकती है।** पुनः मूलप्रश्न पर आते हैं कि माउण्टबैटन को शिमला से दिल्ली बुलाया ही क्यों गया ?

उस समय पाकिस्तान से मारकर भगाये गये लगभग ५० लाख विस्थापित हिन्दू व सिख अपने मकान, जमीन, जायदाद, दुकानें, कल-कारखाने, यहाँ तक कि बर्तन-भाँड़े भी छोड़कर शरणार्थी के रूप में हिन्दुस्थान आये हुए थे, इस आशा में कि उन्हीं की तरह हिन्दुस्तान के मुसलमान अपने-अपने मकान जमीन आदि छोड़कर पाकिस्तान गये होंगे, जो उन्हें ही मिल जायेंगे; पर वह नहीं हुआ। गान्धी और जवाहर की सरकार और कांग्रेस पार्टी ने बरबस मुसलमानों को तरह-तरह के आश्वासन देकर रोके रखा था। जब हिन्दू-सिख शरणार्थियों को सिर छिपाने की जगह नहीं मिली और उधर बरसात के बादल आकाश पर मँडराने लगे, तो नवयुवक शरणार्थी और हिन्दुत्व की भावना से प्रेरित कुछ स्थानीय हिन्दू और सिख युवकों ने बलपूर्वक मुसलमानों को पाकिस्तान भेजने का प्रयत्न किया, जैसा उनके साथ पाकिस्तान में हुआ था। आम जनता का समर्थन उन्हें था ही।

आबादी की अदला-बदली

इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है सन् १९४६ में ब्रिटिश सरकार का एक उच्च स्तरीय प्रतिनिधि मण्डल (कैबिनेट मिशन), सत्ता हस्तान्तरण के विषय पर भारत आया था। उसने विभाजन के दुष्परिणामों के बारे में जिन्ना से विस्तृत चर्चा की। मिशन ने कहा कि विभाजन की प्रस्तावित योजना के फलस्वरूप मुसलमानों की बहुत बड़ी संख्या विभाजित हिन्दुस्तान में और उसी प्रकार एक बड़ी हिन्दू जनसंख्या पाकिस्तान में रह जायेगी। वे सब असुरक्षित रहेंगे। जिन्ना ने उत्तर दिया कि उनकी सुरक्षा का सर्वोत्तम उपाय यह होगा कि यदि एक राज्य अपने अल्पसंख्यकों के साथ दुर्व्यवहार करता है, तो बदले में दूसरा राज्य अपने अल्पसंख्यकों के साथ दुर्व्यवहार करे-- जैसे को तैसा। इसी नीति से मुसलमानों की भारत में और हिन्दुओं की पाकिस्तान में रक्षा हो सकेगी। यही दोनों ओर अल्पसंख्यकों की सुरक्षा की सर्वोत्तम गारण्टी होगी।[५] सन् १९४६-४७ में जिन्ना ने और अन्य मुस्लिम लीगी नेताओं ने आबादी की अदला-बदली का सुझाव दिया था। तदनुसार ही पाकिस्तान ने अपनी हिन्दू आबादी को मारना, प्रताड़ित करना और हिन्दुस्तान की ओर धकेलने की एकतरफा प्रक्रिया शुरू की थी। पाकिस्तान से आये शरणार्थी तथा स्थानीय जनता यही प्रक्रिया भारत सरकार से मुसलमानों के लिए अपनाने का आग्रह कर रहे थे। भारत की कांग्रेसी सरकार यह करना नहीं चाहती थी; क्योंकि पाकिस्तानी नेताओं और भारत के शीर्ष नेताओं (गान्धी, नेहरू, मौलाना आजाद) का उद्देश्य (अन्तिम लक्ष्य) सारे हिन्दुस्तान में पुनः इस्लामी-राज्य स्थापित करना था।

किन्तु हिन्दू भारत में लाखों विद्रोही शरणार्थियों की सामूहिक शक्ति और स्थानीय जनता के प्रबल समर्थन को बलपूर्वक दबाने के लिए बहुत बड़ी सैनिक शक्ति और नृशंस हृदय की आवश्यकता थी, जो निःसंकोच होकर बाहर दिखायी देनेवाले हिन्दू या सिख को गोली से उडा सके। मुसलमान सैनिक टुकड़ियाँ पाकिस्तान जा चुकी थीं। अब यह क्रिया नेहरू और पटेल हिन्दू सैनिकों द्वारा कराते, तो उन्हें स्वयं जन-आक्रोश का सामना करना पड़ता, जिसके कारण उनका ही नहीं, कांग्रेस पार्टी का ही राजनीतिक भविष्य चौपट हो जाता और हिन्दू भारत के इस्लामीकरण की योजना ध्वस्त हो जाती। यह था असली कारण माउण्टबैटन को बुलाने का, ताकि विना अपने पर आँच आये, उसके हाथों से हिन्दू पुनर्जागरण को नष्ट-भ्रष्ट किया जा सके।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के साथ छल

किसी भी देश के राष्ट्रजीवन में स्वभाषा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। सत्ता-हस्तान्तरण के समय यह सर्वमान्य था कि यद्यपि राजभाषा होने के कारण समस्त

भारत में लगभग ३ प्रतिशत सम्पन्न परिवारों और नौकरशाहों को जोड़नेवाली भाषा अंग्रेजी थी, तथापि ६७ प्रतिशत शेष जनता को राष्ट्रीय स्तर पर जोड़नेवाली भाषा हिन्दी ही थी। नेहरू और उनके उपर्युक्त सहयोगियों ने अंग्रेजी के स्थान पर जनभाषा हिन्दी को राजभाषा बनाने में तमाम अड़चनें डालीं। अन्ततः अनेक किन्तु-परन्तु के साथ निर्णय हुआ कि १५ वर्षों बाद अंग्रेजी की जगह पूर्णतः हिन्दी राजभाषा बन जायेगी। (ध्यान करनेवाली बात यह है कि जहाँ राष्ट्रभाषा स्वयं विकसित होती है, वहीं राजभाषा सत्ताधारियों द्वारा बनायी जाती है), पर आठ वर्ष बाद ही, सन् १९५६ में भाषावार प्रान्तों के पुनर्गठन के फलस्वरूप क्षेत्रीय भाषाओं के प्रति उन्माद, क्षेत्रवाद, जातिवाद व परिवारवाद की बढ़ती भावनाओं ने हिन्दी को किनारे कर दिया, अंग्रेजी का महत्त्व पहले से अधिक बढ़ गया और हिन्दू हितों, हिन्दू नवजागरण हिन्दू राष्ट्र के प्रयासों को गहरा झटका लगा।

नेहरू-पटेल की अनबन और गान्धी-वध

स्वाभाविक था कि राष्ट्र के एकीकरण, हिन्दू पुनर्जागरण के समर्थक पटेल और हिन्दू, हिन्दुत्व के मारक नेहरू में नहीं बनी। सत्ता-हस्तान्तरण के ५ महीनों के भीतर दोनों का कई बार टकराव हुआ। कई बार पटेल गान्धी के पास अपना त्यागपत्र देने गये और हर बार गान्धी टाल देते। अन्ततः ३० जनवरी, १९४८ को पटेल गान्धी जी के आगे अड़ ही गये। जैसे-तैसे सायं ५ बजे गान्धी ने 'कल' फैसला करने का वादा किया और अपनी प्रार्थना सभा के लिए चल पड़े। पटेल भी वापस चल दिये। उसी दिन सायं ५:३० बजे नाथूराम गोडसे नामक पूना के एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण ने गोली मारकर गान्धी जी को महानतम बलिदानी ('शहीद-ए-आजम') बना दिया। जवाहरलाल और समस्त नेहरू परिवार का भाग्य खुल गया। हिन्दी में कहावत है, "बिल्ली के भाग्य से छींका टूटा।" गान्धी-वध जवाहरलाल नेहरू के लिए महान् वरदान सिद्ध हुआ। सबसे पहले तो गृहमन्त्री होते हुए भी गान्धी की सुरक्षा न कर पाने के कारण सरदार पटेल को सन्देह के घेरे में खड़ा कर दिया गया। मृत्यु से पहले, पटेल ही गान्धी के पास जानेवाले अन्तिम व्यक्ति थे। इस तथ्य के आधार पर कम्यूनिस्टों और नेहरूवादियों ने गान्धी-हत्या में पटेल की संलिप्तता का अभियोग लगाकर प्रचारित किया। इस प्रकार के वक्तव्य और लेख तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में लेखक ने स्वयं देखे थे। निश्चय ही इससे पटेल की छवि धूमिल हो गयी। दूसरे, हिन्दू पुनर्जागरण के पुरोधा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर तथा सुप्रसिद्ध महान् क्रान्तिकारी, देशभक्त, हिन्दुत्व के प्रखर पैरोकार, विनायक दामोदर सावरकर (वीर सावरकर) को गान्धी-हत्या के अपराध में जेल में डाल दिया गया और संघ पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। एक अन्य चमत्कार, जो लेखक ने अपनी आँखों से देखा, यह था कि केवल एक दिन पहले जो जनता गान्धी की भर्त्सना कर रही थी, (उसकी मुस्लिमपरस्ती के कारण) आज गान्धी-वध पर आँसू बहा रही थी। यह बात सारे देश में बिजली की तरह फैल गयी कि गान्धी का हत्यारा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण कार्यकर्त्ता था। फलस्वरूप गान्धी के अन्धभक्त, महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों की हत्या करने और उनके घरों में आग लगाने में जुट गये। गृहमन्त्री होने के नाते गान्धी-हत्या की जाँच का जिम्मा सरदार पटेल के ऊपर पड़ा। २७ फरवरी, १९४८ को पटेल ने अपनी एक रिपोर्ट जवाहरलाल नेहरू को भेजी, जिसका कुछ अंश यह है--

"बापू (गान्धी जी) की हत्या की जाँच के काम को मैं नित्यप्रति देखता रहा हूँ। सभी (६) अभियुक्तों ने अपनी गतिविधियों के बारे में लम्बे-लम्बे बयान दिये हैं। उनसे साफ पता चलता है कि इस षड्यन्त्र का कोई भी भाग दिल्ली में नहीं रचा गया। उनके कार्यक्षेत्र पूना, मुम्बई, अहमदनगर और ग्वालियर थे। दिल्ली उनका अन्तिम लक्ष्य था। इनसे एक बात और प्रमाणित होती है कि इसमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कोई हाथ नहीं था...[५]।

किन्तु तब तक बहुत देर हो चुकी थी। दूसरे, उक्त रिपोर्ट या उसका सार भी बहुत दिनों बाद कुछ समाचार पत्रों में आया। घटना के लगभग साल भर बाद विशेष अदालत ने फैसला दिया कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और वीर सावरकर का गान्धी-हत्या में कोई हाथ नहीं था, तथापि इन दोनों की खोई गरिमा फिर न लौट सकी। गान्धीवादी और नेहरूवादी आज भी उन्हें विभिन्न मञ्चों से गान्धी-हत्या के लिए जिम्मेवार कहते हैं। हालत यह हो गयी है कि 'हिन्दू' और 'हिन्दुत्व' मानो अपमानजनक अपशब्द हो गये हैं। □

– ए–२, बी/६४ए, एकता अपार्टमेण्ट्स, पश्चिम विहार, नयी दिल्ली– ११००६३

सन्दर्भ :

(१) दुर्गादास की 'इण्डिया फ्रॉम कर्जन टू नेहरू एण्ड आफ्टर', रूपा पेपरबैक १९७७, पृष्ठ २२९–३०।
(२) वही, पृष्ठ २३०–३१।
(३) गान्धीज कॉरेसपोण्डेंस विद द गवर्नमेण्ट, १९४४–४७, नव जीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, प्रथम आवृत्ति, पृष्ठ २५०–५२।
(४) प्रफुल्ल गोराडिया व के.आर. फण्डा कृत 'एण्टी हिन्दू', पृष्ठ १०७, आधार बी.आर. नन्दा की पुस्तक 'गान्धी'।
(५) अंग्रेजी पत्रिका, 'जनसंघ टुडे' (मासिक), पृष्ठ ४, १४५, सुन्दर नगर, नयी दिल्ली–०३।
(६) रामगोपाल की पुस्तक, 'हिन्दू कल्चर ड्यूरिंग एण्ड आफ्टर मुस्लिम रूल', पृष्ठ १४६, एम.डी. पब्लिकेशन्स, अन्सारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली–०२, आधार दुर्गादास सम्पादित 'सरदार पटेल का पत्राचार, छठा भाग, १९४५–५०, पृष्ठ ५६–५८।

(समाप्त)

अन्धेरे बन्द कमरे में भटकती आत्माएँ

– डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री

पिछले दिनों अफगानिस्तान की एक घटना की चर्चा काफी तेजी से होती रही है। गुलनाज नाम की किसी लड़की से उसी के परिवार के किसी सदस्य ने बलात्कार किया। जाहिर है कि पुलिस इस मामले में कदम उठाती। मुकदमे के बाद बलात्कारी को सजा हो गयी। यहाँ तक यह घटना साधारण दिखती है। ऐसा अनेक मुल्कों में होता रहता है; लेकिन इस ओर अपराधियों को दण्ड भी मिलता रहता है; लेकिन इस मामले में असली बात बलात्कारी को दण्ड मिलने के बाद की है। पुलिस ने गुलनाज को भी गिरफ्तार कर लिया और उस पर भी मुकदमा चला; परन्तु प्रश्न है कि इस पूरे काण्ड में गुलनाज का क्या दोष है ? वह तो दरअसल पीड़िता है, जिसके साथ अन्याय किया गया है; लेकिन अफगानिस्तान में इस्लामिक कानून के व्याख्याकारों का कहना है कि प्रश्न उसके दोषी होने या न होने का नहीं है। इस बलात्कार के बाद गुलनाज की हैसियत व्यभिचारिणी की हो गयी है और इस्लामी समाज इस्लामी मूल्यों की रक्षा के लिए व्यभिचारिणी स्त्री को दण्डित करना अपना कर्त्तव्य मानता है। इस्लामी न्याय के अनुसार गुलनाज को सात वर्ष कैद की सजा हुई। इस बलात्कार के कारण वह एक बच्चे की माँ भी है। गुलनाज के इस किस्से को लेकर अनेक देशों में आश्चर्य व्यक्त किया गया, तब अफगानिस्तान में राष्ट्रपति हामिद करजई ने विशेष आज्ञा से गुलनाज की सजा माफ कर दी और उसके जेल से बाहर आने की सम्भावना पर खुशियाँ मनायी गयीं।

बहुत से विद्वानों ने इस्लामी मूल्यों में हो रहे बदलावों पर तालियाँ बजाकर खुशी का इजहार भी किया। यह भी कहा गया कि इस्लामी मूल्य जड़ नहीं हैं। उनमें भी काल-क्रमानुसार परिवर्त्तन होता रहता है; परन्तु तालियाँ बजानेवालों की हवा जल्द ही काफूर हो गयी, जब गुलनाज के इस किस्से का अन्तिम पटाक्षेप हुआ। गुलनाज को सजा से माफी इस शर्त पर दी गयी है कि जेल से छूटने के बाद उसी पुरुष से शादी करेगी, जिसने उसके साथ बलात्कार किया था। इस्लाम के दानिशमन्दों का कहना है कि गुलनाज द्वारा बलात्कारी पुरुष से शादी करने पर ही इस्लाम की रक्षा हो सकेगी। गुलनाज ने भी अपनी इस नियति को स्वीकार कर लिया है। उसका कहना है, इस्लामी कानून के इस निर्णय से उसकी बच्ची को बाप का नाम मिल जायेगा और उसके भाई भी समाज में इज्जत से रह सकेंगे अन्यथा समाज में उसके भाइयों को व्यभिचारिणी बहन का भाई कहा जायेगा। ध्यान रखना चाहिए कि यह घटना मध्यकाल की नहीं; बल्कि उस २१वीं शताब्दी की है, जिसे ज्ञान की शताब्दी कहा जा रहा है और ऐसा भी हो-हल्ला सुनने में आ रहा है कि समूचा विश्व एक गाँव बन गया है। इस ज्ञान की शताब्दी और हो-हल्ले के बीच गुलनाज जैसी अनेक स्त्रियाँ इस्लाम की रक्षा के लिए बलात्कारी से शादी करने के लिए मजबूर हैं। क्या इस बन्द कमरे से निकलने का कोई रास्ता है ? ऐसा ही एक रास्ता अफगानिस्तान में ही तलाशने का प्रयास एक युवक ने किया था। वह इस्लाम छोड़कर ईसाई हो गया। तब कुछ लोगों ने कहा यह रास्ता सही नहीं है। यह एक बन्द कमरे से दूसरे बन्द कमरे में जाने का प्रयोग मात्र ही कहा जा सकता है; लेकिन फिलहाल यह बहस का मुद्दा नहीं है। अफगानिस्तान के उस युवक का यह प्रयोग सही था या गलत इसका निर्णय तो बाद के काल में ही हो सकता था। मुख्य प्रश्न है कि क्या उस युवक को अपनी इच्छा से इस्लाम छोड़ने का अधिकार है या नहीं ? इस्लामिक कानून ने इस पर भी अपना निर्णय सुनाया। यह प्रयोग करने के लिए उस युवक को न्यायालय ने मृत्युदण्ड दिया और फाँसी के फन्दे पर लटकने के लिए जेल में डाल दिया गया। चर्च को लगा होगा कि इस युवक का बचना अनिवार्य है, नहीं तो दुनिया भर में उसके मतान्तरण आन्दोलन को धक्का पहुँचेगा। राष्ट्रपति पर दबाव डालकर अमेरिका ने उस युवक को बचा तो लिया; लेकिन उसे अफगानिस्तान छोड़ना पड़ा; परन्तु इसके साथ ही अप्रत्यक्ष रूप से चेतावनी भी मिल गयी कि इस्लाम छोड़कर जाने का अर्थ है मृत्युदण्ड। चर्च सभी को तो नहीं बचा सकता। शायद इसलिए गुलनाज ने बलात्कारी से शादी करने का निर्णय लिया होगा। एक ओर मौत और दूसरी ओर बलात्कारी।

पिछले दिनों ऐसी ही एक घटना कश्मीर में हुई। कश्मीर में कुछ मुसलमान ईसाई हो गये। उन्होंने इस्लाम छोड़कर ईसाई सम्प्रदाय में जाना क्यों बेहतर समझा इसका उत्तर तो वे ही दे सकते हैं। लेकिन इस घटना के बाद जो तहलका मचा, वह काबिले-गौर है, अल्पसंख्यक आयोग के अलमबरदार तुरन्त श्रीनगर पहुँचे और उन्होंने मुसलमानों के अनेक संगठनों को यह विश्वास दिलाने की कोशिश की कि ईसाई संगठन आगे से ऐसा कुफ्र नहीं करेंगे। इस बार उन्हें क्षमा कर दिया जाये। जिस पादरी ने मुसलमान युवकों को यीशु मसीह का उपदेश देने की हिमाकत की थी, उसे जम्मू-कश्मीर सरकार ने गिरफ्तार कर लिया और मुस्लिम संगठनों के जख्मों पर मरहम लगाने की कोशिश की। हुर्रियत कान्फ्रेंस के मीरवाईज उमर फारुख ने सब

संस्मरण

हिन्दी के दो इतिहास-पुरुष

– बद्रीनारायण तिवारी

राष्ट्रकवि द्विवेदी जी के फतेहपुर में ७५वाँ अमृत महोत्सव (सन् १९८०–८१) आयोजन की रूपरेखा श्री धनंजय अवस्थी ने बनायी, जो उनके मानसपुत्र के रूप में जाने जाते हैं। उस समारोह में महीयसी महादेवी वर्मा को भी आना था; किन्तु उनका स्वास्थ्य खराब होने से टेप द्वारा सन्देश सुनाया गया। उसमें ७५ मोमबत्ती जलाने की योजना बनायी गयी। इस पर द्विवेदी जी ने दीपक-प्रज्वलन महत्ता की परोक्ष रूप से चर्चा की। आजकल 'हैप्पी बर्थ डे' यानि जन्म-दिन पर मोमबत्ती बुझाकर अँधेरा करके उजाले की कामना की जाती है। उस अमृत-महोत्सव में ७५ दीपक जलाकर द्विवेदी जी के चिरायु होने की कामना के साथ बृहद् कवि-सम्मेलन हुआ।

वास्तव में द्विवेदी जी की स्मरण-शक्ति अद्भुत थी। अपने जीवन की उपलब्धियों में महात्मा गान्धी को एकमात्र अभिनन्दन-ग्रन्थ का सम्पादन करने का सौभाग्य, जिसकी भूमिका महान् दार्शनिक सर्वपल्ली डा. राधाकृष्णन ने लिखी थी। उस ग्रन्थ को २ अक्तूबर, १९४४ को महात्मा गान्धी के 'अमृत महोत्सव' के दिन समर्पित कर गौरवान्वित होकर बखान करते थे। दूसरी घटना भी महात्मा गान्धी ने जब वर्धा आश्रम में आमन्त्रण हेतु श्रीमन्नारायण अग्रवाल (पूर्व राजदूत नेपाल) को इन्दौर भेजकर द्विवेदी जी को आश्रम में बुलवाया, वहाँ जिस आत्मीयता से गान्धी जी ने रखा, उसमें चटनी बनवाकर खिलाने की चर्चा विशेष रूप से अनेक बार बतायी। इस पर उनके कथनानुसार कि ऊपरी आडम्बर दिखावे से संक्षिप्त तृप्ति होती है, आत्मीयता नहीं होती।

एक दिन द्विवेदी जी अपने गुरु हिन्दी साहित्य के शलाकापुरुष आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की विद्वत्ता को बताने लगे। महामना मालवीय जी क़ाशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हर विषय के उद्‌भट मनीषियों का चयन करने में दूरदृष्टि रखते थे। हिन्दी साहित्य के समालोचकों में आचार्य शुक्ल शिखर-कलश माने गये हैं। हिन्दी साहित्य में गोस्वामी तुलसीदास को स्थापित करने में उनका सर्वप्रथम स्थान था। इसके पूर्व विश्वकवि तुलसी के 'रामचरितमानस' को 'वाल्मीकि रामायण' के अनुवाद रूप में कहा जाता था। उनके निधन पर राष्ट्रकवि द्विवेदी ने अपनी भावपूर्ण पंक्तियों में रेखांकित कर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के कृतित्व-व्यक्तित्व को सँजोया–

चले अयोध्या सूनी करके, क्यों हिन्दी के राम,
कौसल्या को कौन बँधावे, धैर्य मिले विश्राम।
भरत चले ले चरण-पादुका, ही ले जाओ थाम।
उनका ही पूजन-अर्चन हो, पूर्ण बनें सब काम।
सिंहासन है रिक्त तुम्हारा, इसमें बैठे कौन।
अधिकारी है कौन यहाँ पर, उत्तर में सब मौन।
वन्दनीय, अभिनन्दनीय तुम, गौरव गरिमा धाम।
सजल स्मृति नित झुका करेगी, बनकर कोटि प्रणाम।

कानपुर प्रवास में एक दिन मैंने द्विवेदी जी से पूछा कि आपने काव्य के अतिरिक्त गद्य का लेखन भी किया। इस पर कुछ देर सोचने के पश्चात् कहने लगे कि आजादी के पूर्व लखनऊ से सर्वप्रथम प्रकाशित हिन्दी दैनिक 'अधिकार' का लगभग सात वर्षों तक तथा १० वर्षों तक इलाहाबाद से 'बाल भारती' का सम्पादन किया। इसके अलावा बच्चों के लिए लघु कथाओं की कई कृतियाँ हैं। मानस संगम का इतिहास 'मैं कहता आँखों की देखी' लिखा। □

– मानस संगम, महाराज प्रयाग नारायण मन्दिर, शिवाला, कानपुर– २०८००१ (उ.प्र.)

मुख-मौलवियों को आगाह कर दिया कि इस्लाम के किले में सेंध लगानेवाले इन दुष्टों का इकट्ठे होकर और डटकर मुकाबला करना होगा। सन्देश बिलकुल साफ है कि इस्लाम का किला छोड़कर जाने की किसी को इजाजत नहीं दी जा सकती। इस किले में दाखिल होने के सभी दरवाजे खुले हैं; लेकिन इससे जाने के लिए दरवाजे की बात तो दूर, एक छेद तक उपलब्ध नहीं है। सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि इस किले की रक्षा के लिए कश्मीर में वहाँ की सरकार भी पूरी ताकत से मौलवियों के साथ है। अफगानिस्तान से लेकर कश्मीर तक, कश्मीर से लेकर सऊदी अरब तक, सब जगह एक ही हालात हैं। भारत में जब चर्च हिन्दुओं का मतान्तरण करने का प्रयास करता है, तो सरकार और तथाकथित मानवाधिकारवादी चर्च के साथ डटकर खड़े हो जाते हैं और यही चर्च इस्लाम के किले में दाखिल होने की कोशिश करता है, तो सरकार और मानवाधिकारवादी इस्लामी संगठनों के आगे क्षमायाचना की मुद्रा में दुम हिलाते हैं। इस प्रश्न का उत्तर अन्ततः भारत की जनता को ही खोजना होगा। □

(नवोत्थान लेख सेवा, हिन्दुस्थान समाचार)

परामर्शों पर टिकते हैं परिवार

कुटुम्ब

– डॉ. मृदुला सिन्हा

हर स्त्री-पुरुष के लिए विवाह अनिवार्य नहीं है, पर आवश्यक अवश्य है। सौ वर्षीय सांसारिक जीवन जीने के लिए विचारकों ने जो क्रम बना दिया, उसमें सर्वप्रथम जीवन जीने की शिक्षा देने के लिए ब्रह्मचर्य आश्रम में रहने का विधान बना। पच्चीस वर्ष के बाद गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की अनिवार्यता बतायी गयी। विवाह के लिए इसी उम्र को उचित ठहराया गया। विवाह संस्कार में कसमें खायी जाती हैं, एक-दूसरे को उम्र भर साथ निभाने के वचन दिये जाते हैं, तो पृथ्वी, अग्नि, आकाश, सूर्य, चन्द्र, तारों और पत्थर को साक्षी रखकर अग्नि के सात फेरे लिये जाते हैं। दुल्हा-दुल्हन द्वारा लिये जा रहे वचनों के बीच विवाह को टिकाऊ रखने के लिए पण्डित जी का प्रवचन भी चलता रहता है। स्वजन-परिजन की शुभकामनाएँ मिलती हैं। कभी-कभी यह सब बेकार हो जाता है। विवाह हो जाता है, गृहस्थी नहीं बस पाती। गृहस्थी बन भी गयी तो क्या, प्रतिदिन खटर-पटर होती रहती है। दम्पति-कक्ष से उठा धुँआ आँगन, दरवाजे आकर सारे परिवार को लपेट लेता है। आँखों के आगे अन्धकार छा जाता है। मामला वहीं तक नहीं रुकता, कोर्ट-कचहरी तक पहुँचता है।

तीन दशक पूर्व तक इन पारिवारिक मामलों को घर के अन्दर ही निबटा लिये जाने की व्यवस्था थी। मामला आगे बढ़ा, तो ज्यादा से ज्यादा हितमित्र रिश्तेदार और सम्बन्धियों का हस्तक्षेप और परामर्श चलता था। देखते-देखते जिस तेजी से महिलाओं के चरण घर की जगह बाहर अधिक पड़ने और चलने लगे, वैवाहिक जीवन के मामले भी शयन-कक्ष की चौखट से आँगन और आँगन से दरवाजा लाँघते हुए पञ्चायतों और कोर्ट-कचहरियों में पहुँचने लगे हैं। समाज चौकन्ना हुआ। सरकार के भी कान खड़े हुए। जितनी बड़ी संख्या में वैवाहिक और पारिवारिक मामले सामने आने लगे, उनकी परिणति यदि विवाह और परिवार तोड़ने में हो, तो समाज की चूलें हिल जायेंगी। पत्नी घर छोड़ गयी, तो बच्चों और बुजुर्गों का क्या होगा ? इन घरछोड़ या घर से निकाली गयी पत्नियों को कहाँ रखा जायेगा ? मामला तो संगीन था ही। इसलिए तो समाज और सरकार ने भी सोचना प्रारम्भ किया। व्यवस्थाएँ विकसित होने लगीं।

वैवाहिक जीवन को टूटने से बचाने के लिए शहरों में शिकायतों को सुनना प्रारम्भ किया गया। धारणा यह रही कि वैवाहिक जीवन की ढ़ेर सारी शिकायतें तो किसी तीसरे को सुनाते-सुनाते ही समाप्त हो जाती हैं। घर आँगन में ही दादी सासों और रिश्तेदारियों में कई महिलाएँ इन शिकायतों को सुनने के लिए होती थीं। उधर पुरुष भी अपने हितमित्रों से राय मशविरा करते थे। शहरों में, घरों में ऐसे सुननेवालों की अनुपस्थिति को देखकर ही समाज के कुछ लोग सुनने लगे। परामर्श देने लगे। धीरे-धीरे एक संस्था का आविष्कार हो गया, जिसे 'परिवार परामर्श केन्द्र' कहा जाने लगा। परिवार परामर्श केन्द्रों को चलाने के लिए सरकार से भी अनुदान मिलने लगे। महिला आयोग के गठन के उपरान्त राष्ट्रीय और राज्यस्तरीय महिला आयोगों में भी परामर्श दाताओं की व्यवस्था होने लगी। परिवार न्यायालयों के गठन हुए।
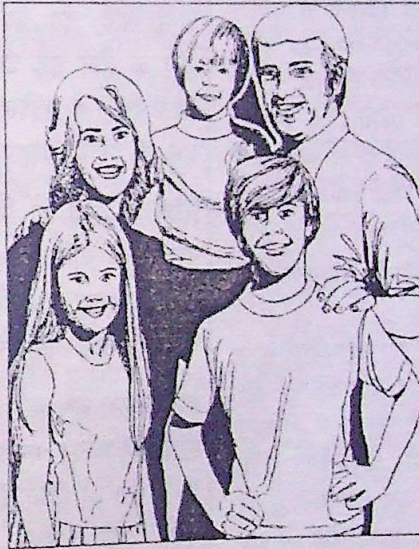
इन संस्थाओं का उद्देश्य परिवार को टूटने से बचाना ही है। परिवार के टूटने से सरकार और समाज की मुसीबतें बढ़ जाती हैं। निराश्रित महिलाओं और बच्चों के रखने के लिए घरों के बाहर सामूहिक घर बनाने पड़ते हैं। ''बापनु घर'' ''अल्पकालिक आवास गृह'' जैसे घर, घर से बाहर बनने लगे। इन परिवार परामर्श केन्द्रों में आये मामलों का अध्ययन भी बड़ा दिलचस्प होता है। पति-पत्नी के बीच एक-दूसरे से क्या अपेक्षाएँ होती हैं, किन-किन बातों पर मतभेद और मनभेद बढ़ता है, साथ ही कौन पक्ष परिवार जोड़ने हेतु परामर्श लेने में अधिक सार्थक होते हैं, सभी बातें सामने आ जाती हैं।

परिवार परामर्श केन्द्रों में परामर्श देनेवाली महिलाओं और पुरुषों का जीवनानुभव परिपक्व होना आवश्यक है। यों तो सरकार द्वारा अनुदानित केन्द्रों में मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र और समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर महिलाओं को ही परामर्श देने योग्य माना जाता है। मेरी धारणा है कि इन परामर्शदाताओं को शिकायती का विश्वास जीतने में क्षमतावान्, सुनने में धैर्यशील और परामर्श देने में अनुभवी होना आवश्यक है। स्त्री, पुरुष, परिवार या जाति-धर्म के प्रति

पूर्वग्रही परामर्शदाता तो इस कार्य के लिए अयोग्य ही होते हैं। उसका संवेदनशील और जीवनानुभव से परिपक्व होना अधिक जरूरी है।

परिवार परामर्श के क्षेत्र में मेरे दीर्घकालिक अनुभव हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार के विवादों को सुनती और सुलझाने की कोशिश करती रही हूँ। एक बार एक शिकायत एक नवविवाहिता के द्वारा आयी। उसने मेरे पास बैठते ही कहा-- "मैडम ! मुझे शीघ्र तलाक चाहिए। मैं इस मर्द को पहचान गयी। इसके साथ नहीं रह सकती।"

मैंने पूछा-- "तुम्हारी शादी के कितने दिन हुए ?" उसने तपाक से कहा-- "तीन महीने...हो गये ?" 'तीन महीने' को उसने इतना खींचा मानो तीन युग बीते हों। मैंने कहा-- "तुम हमें भी तो सुनाओ कि क्या शिकायते हैं। शायद हम समाधान ढूँढ़ सकें।" वह नहीं मानी। फिर नहीं आयी। हमें सुनना या सुनाना उसे मञ्जूर नहीं था। फिर कैसा परामर्श ?

एक चतुर्थ वर्गीय कर्मचारी महिला आयोग से इतना भय खाता हुआ आया कि परामर्शदाताओं के सामने बोल भी नहीं पा रहा था। सर्वप्रथम हमने उसे विश्वास दिलाने में घण्टों लगाये कि महिला आयोग सिर्फ महिलाओं का पक्ष नहीं लेता। पतियों की भी सुनता है। हमारा उद्देश्य है परिवार को जोड़ना और यह सुनिश्चित करना कि परिवार में सबको सम्मान मिले। परिवार परामर्श केन्द्र के बारे में भी समाज में यही अवधारणा बनी है। सच बात यह है कि इन केन्द्रों पर सिर्फ महिलाएँ नहीं, परिवार के बड़े-छोटे सभी पुरुष और महिलाएँ, जो पीड़ित या प्रताड़ित हैं, अपनी शिकायत ला सकती हैं।

केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड देश भर में सञ्चालित ५०० परिवार परामर्श केन्द्रों को अनुदान देता था। दस वर्ष पूर्व उन मामलों का विश्लेषण करवाने के लिए किसी संस्था से अध्ययन करवाया गया। "परिवारः परम्परा, पीड़ा और परिवर्त्तन" विषय से ३०० केन्द्रों में आये १५ लाख मामलों पर अध्ययन हुआ। अध्ययन के निष्कर्ष यों थे-- "समाज में पसर रहा 'अपना जीवन' जीने का भाव परिवारों को तोड़ रहा है।" अध्ययन कर रही संस्था ने कुछ सकारात्मक सुझाव भी दिये थे।

...मेरा सौ-सौ बार नमन है

– विष्णु गुप्त 'विजिगीषु'

जिसकी मोहक छवि के ऊपर, बलि-बलि जाता नील गगन है।
ऐसी प्यारी मातृभूमि को, मेरा सौ-सौ बार नमन है।।

श्यामा इसकी पढ़े प्रभाती, कोयल गाये मीठी ठुमरी।
बिरहा इसका पढ़े पपीहा, और मयूरी गाये कजरी।।
मैना इसके गीत सुनाये, तोता करता राम भजन है।
ऐसी प्यारी देवभूमि को, मेरा सौ-सौ बार नमन है।।

स्वर्ण-कमल पर जन्म लिया है, पारिजात फूलों पर डोली।
जग को अपने भाव बताने, पहले-पहल वेद में बोली।।
रामराज्य की महत् कल्पना, करती इसकी रामायण है।
सुरगणवन्दित पुण्यभूमि को, मेरा सौ-सौ बार नमन है।।

जन्मे आर्य, देव उपजाये, अवतारों को गोद खिलाया।
जग के तीन बड़े देवों को, इसने ही पालना झुलाया।।
कोख-कमल में ऋषियों-मुनियों का होता शुभ गंगावतरण है।
प्रभु की प्यारी भरतभूमि को, मेरा सौ-सौ बार नमन है।।

सिंहों के दाँतों को गिनकर, इसने सीखा गणित यहाँ है।
इसका हर शिक्षित तुलसी है, हर अनपढ़ा कबीर रहा है।।
किसके-किसके नाम गिनाऊँ, इसके अनगिन पुत्र रतन हैं।
जग में न्यारी मातृभूमि को, मेरा सौ-सौ बार नमन है।।

इसका कण-कण अति पवित्र है, राघव जैसा शुभ चरित्र है।
तीर्थ-धाम-मन्दिर मनभावन, त्याग-तपस्या के उपवन हैं।।
शक्ति पीठ औ' दिव्य शिवालय, ज्योतिर्लिंग के पुण्य सदन हैं।
ऐसी प्यारी मातृभूमि को, मेरा सौ-सौ बार नमन है।।

– गुनारा मार्ग, परशुरामपुरी, शाहजहाँपुर (उ.प्र.)

आज समाज में परिवार परामर्श का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। परिवार को बचाना आवश्यक हो गया है। छोटी-छोटी बातों या किसी एक के अहंकार के कारण परिवार नहीं टूटने चाहिए। परिवार ही समाज और राष्ट्र का आधार है। स्त्री-पुरुष और बच्चों के सशक्तीकरण की जगह 'परिवार सशक्तीकरण' ही होना चाहिए। परामर्श देनेवालों की साख बननी चाहिए। उन्हें भी संवेदनशील और परिपक्व मानसिकता का होना चाहिए। निष्पक्ष होना तो आवश्यक है ही। स्त्रीवादी या पुरुषवादी परामर्शदाता नहीं चाहिए। उन्हें परिवारवादी होना चाहिए। मुझसे कभी किसी ने पूछा था-- "आप फीमेलिस्ट हैं ?" मेरा उत्तर था-- "मैं फेमिलिस्ट हूँ।" □

– पी.टी. ६२/२०, कालकाजी, नयी दिल्ली– ११००१९

नमक के पीछे भी राजनैतिक धोखाधड़ी

सन् १९९६ के पहले जो नमक आम आदमी को २५–३० पैसे किलो सरलता से उपलब्ध हो जाता था, उसे खरीदने के लिए आज आठ-दस रुपये से लेकर १५ रुपये तक खर्च करना पड़ रहा है। क्या यह गोरखधन्धा किसी गहरी साजिश के बिना सम्भव है ? गत तीस वर्षों से बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भारत के सत्ताधीशों को सुनहले सपने दिखा अपने मकड़जाल में फँसाकर अपना उल्लू सीधा कर रही हैं। पहले घेंघा रोग का हौआ खड़ा किया गया और फिर उसके बचाव के लिए आयोडिनयुक्त नमक का युद्ध-स्तर पर प्रचार-प्रसार कराया गया तथा उसे एक महत्त्वपूर्ण वस्तु के रूप में स्थापित करा दिया गया।

यह आयोडिनयुक्त नमक है क्या ? यह कृत्रिम आयोडिनयुक्त नमक समुद्र के खारे पानी से बनाया जाता है, जिसमें अनेक जीवित एवं मृत जानवरों का आश्रयस्थल होता है। क्या इसे शुद्ध और शाकाहारी माना जाना चाहिए जबकि देशी और विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपने द्वारा निर्मित्त आयोडिनयुक्त नमक की प्रत्येक थैली पर शुद्ध और शाकाहारी और हानिरहित होने का दावा करती है, जबकि इस आयोडिनयुक्त नमक के विशेषज्ञों द्वारा व्यक्ति पर होनेवाले अनेक दुष्परिणामों का दावा किया गया है जैसे स्त्री-पुरुषों के बढ़ते प्रजनन विकार, चर्म, श्वास एवं पाचन संस्थान की एलर्जी, श्वेत प्रदर, गर्भाशय में फाईब्रोसा (गाँठें), गञ्जापन आदि-आदि। इनका सम्बन्ध आयोडिनयुक्त नमक से जुड़ा हुआ बताया जाता है। विशेषज्ञों का मानना है कि आयोडिनयुक्त नमक में मिलाये जानेवाले पोटेशियम, आयोडेट एवं उसे ठोस बनने से रोकने वाला पदार्थ ई–५३६ दोनों ही अधिक मात्रा में शरीर के लिए हानिकारक माने जाते हैं। इनसे एलर्जी की शिकायत बहुतायत से पायी गयी है। एलोपैथी के जानकारों का स्वयं मानना है कि आयोडिन की अधिक मात्रा से गाँठों का फूलना, सिरदर्द, खुजली, जुकाम, खून में प्लेटलेट्स की कमी आदि उपद्रवों के उत्पन्न होने की सम्भावना बनी रहती है। इस तरह के लक्षण पश्चिमी उत्तर प्रदेश के डेंगू-मलेरिया प्रभावित क्षेत्रों में देखे गये हैं, जिनके कारण रोगी मृत्यु के समीप तक पहुँच चुके हैं।

हमारे देश में नमक की औसत खपत प्रति व्यक्ति १५ ग्राम दैनिक और ५ किलो वार्षिक न्यूनतम है। राष्ट्रीय सालाना खपत ४० लाख टन के आसपास आँकी गयी है। सरकारी आँकड़े भी यही बताते हैं कि देश में ४२ लाख टन आयोडिनयुक्त नमक का और केवल तीन लाख टन सादे नमक का उत्पादन होता है। यह मुँह में पानी ला देनेवाला जादुई आँकड़ा इस देश के विशाल बाजार को कब्जाने की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को, धन कमाने के लोभियों को सिर्फ इतना ही तो करना था कि 'साधारण नमक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है' और इस झूठे प्रसार और प्रचार में नामी हस्तियों को भी शामिल कर लिया गया। वे अपने गोरखधन्धे में सफल भी हुए।

जिस घेंघा रोग का हौआ खड़ाकर देशवासियों को डराया गया, उसकी असलियत यह है कि यह घेंघा रोग भारत की तुलना में जर्मनी और अमेरिका में दस गुना अधिक है; लेकिन इसके बावजूद उन देशों में साधारण नमक को प्रतिबन्धित नहीं किया गया। आज भी भारत में पैकिंग करनेवाली देशी और विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्रुपनियाँ बाजार से साधारण नमक २५–३० पैसे किलों के भाव से ही खरीद रही हैं। ध्यान दिये जाने की बात यह है कि पोटेशियम ओयोडाईड के स्थान पर सस्ते पोटेशियम आयोडेट का उपयोग किया जाता है, जिसे पर्यावरण मन्त्रालय ने सन् १९९४ में ही जहरीला माना था। सहज ही एक सवाल पूछा जा सकता है कि क्या घेंघा वास्तव में आयोडीन की कमी से होता है ? सन् १९८९ में राष्ट्रीय घेंघा उन्मूलन कार्यक्रम के तहत महाराष्ट्र में एक सर्वे कराया गया था, जिसका निष्कर्ष था कि "घेंघा का मुख्य कारण भूख और कुपोषण है।"

हमारे यहाँ तो दूरदर्शन सहित अनेक चैनलों के माध्यम से धुँआधार प्रचार कराया गया था कि आयोडिन युक्त नमक नहीं खाने से गर्भावस्था के दौरान मन्दबुद्धि और अपंग बच्चे पैदा होते हैं। प्रचार का माध्यम बच्चों को बनाया गया, जो कि प्रत्येक परिवार के लिए संवेदनशील होता है। बच्चे के स्वास्थ्य की चिन्ता माँ-बाप को होना स्वाभाविक ही है। सरकारी प्रचार माध्यम भी इस झूठे भ्रामक प्रचार में पीछे नहीं रहे।

इस तथ्य को साधारणतया नजरअन्दाज ही कर दिया जाता है कि साधारण नमक से आयोडिनयुक्त बनाने की जो प्रक्रिया प्रारम्भ की जाती है, उस फ्री फ्लो के दौरान नमक में मौजूद मैम्नीशियम आयोडिन नमक तत्त्व को उड़ा दिया जाता है। वास्तव में यही वह तत्त्व है, जो वातावरण से वाष्प को अवशोषित कर नमक को नम बनाता है। इस स्थिति में आयोडिनयुक्त जिस नमक का हम सेवन करते हैं, उसमें से उस आवश्यक तत्त्व मैग्नीशियम से भी वञ्चित कर दिया जाता है। इसकी कमी से शरीर में कैल्शियम की कमी पैदा होती रहती है, जिससे हड्डियों के आस्टियोपोरोसिस जैसे रोगों की सम्भावना बढ़ जाती है।

जिस आयोडिन की कमी का जोर-शोर से प्रचार किया जाता रहा है, उसकी कमी हरी सब्जियाँ, आलू, मछली आदि से होती रहती है। बरसात के पानी से भी इस आयोडिन

'हाथ' के हाथ

– सूर्य नारायण शुक्ल

(१)
सोनिया जी के
दिग्विजयी घोड़े
ऐसे-वैसे थोड़े हैं।
पक्के गपोड़े हैं।।

(२)
कांग्रेसी रानी का
खुशामदी बाजा !
'दिग्गी' राजा।।

(३)
दुनिया का आतंकवादी
दिग्विजय के लिए
'ओसामा जी' है
भारत की जनता के लिए
योग गुरु
दिग्विजय के लिए
'ठग' है !
भ्रष्टाचार के विरोधी
अन्ना जी पाजी हैं !
वाकई इनकी जिह्वा पर
सोनिया जी विराजी हैं।।

(४)
सेकुलर भाइयों की दुहाई !
पाकिस्तान छोटा
भारत बड़ा भाई।
दोनों में होवे
बड़ा भाईचारा।
यों कहें, छोटे का
बड़ा भाई-'चारा'।।

(५)
सेकुलरिस्ट के लिए
भारत में अल्पसंख्यक
सिर्फ मुसलमान है।
'पड़ोसी मुल्क' का अर्थ
सिर्फ पाकिस्तान है।।

(६)
भारत की ब्यूरोक्रेसी में
एक ही कल्चर 'एग्री'–कल्चर।
भारत जन की जीविका का
मुख्य आधार एग्रीकल्चर।।

(७)
बागों के शहर में नहीं
तरुओं की छाया
चमक बिखेरती है,
पत्थर की माया।।

(८)
हिन्दी में सुर ठीक नहीं है
अंग्रेजी बेसुर भी बढ़िया।
परदेसी मिट्टी चन्दन है,
देशी चन्दन भी है खड़िया।।

(९)
हिन्दू जन की सोच अनोखी
इनका ढंग अनूठा।
घर की 'खाँड' खुर-खुरी लागे
चोरी का गुड़ मीठा।।

(१०)
भ्रष्टाचार-विरोधी आन्दोलन
हाथ-बेहाथ।
'हाथ' पड़ गया इसके
पीछे धोकर हाथ।।

– दयानन्द नगर (डी.ए.वी. इण्टर कालेज के पास) बाराबंकी– १२५००१ (उ.प्र.)

की कमी की पूर्त्ति होती है। वैसे प्रत्येक व्यक्ति को १००–१५० माईक्रोग्राम आयोडिन की ही जरूरत होती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की सहायक संस्था इण्टरनेशनल कौंसिल फार कण्ट्रोल आफ आयोडिन डेफीशियेंसी एण्ड डिस आर्डर का मानना है कि स्वास्थ्य की दृष्टि से आयोडिन की मात्रा को नमक में किसी भी स्तर पर स्वीकार नहीं किया जा सकता। तात्पर्य यह कि आयोडिन की कमी वाले रोगियों को दवा के रूप में इसका सेवन करना बेहतर उपाय तो हो सकता है; लेकिन साधारण नमक पर पाबन्दी लगाकर आयोडिनयुक्त नमक खाने के लिए आम आदमी को मजबूर किया जाना उचित नहीं कहा जा सकता। □

(महाकोशल संदेश से साभार)

भूल सुधार

गतांक में पृष्ठ ३४, ३५ पर प्रकाशित कार्यक्रम के चित्रों में भूलवश उनके नीचे परिचय नहीं जा सका। चित्र (१) मुख्य अतिथि श्री अरुण जेतली जी श्रोताओं को सम्बोधित करते हुए। (२) में बायें से श्री आनन्द मिश्र 'अभय' (सम्पादक, 'राष्ट्रधर्म'), श्री आनन्दमोहन चौधरी (निदेशक, राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमि.), श्री रामकुमार वर्मा (क्षेत्र कार्यवाह, रा.स्व.सं.), श्री अरुण जेतली, श्री श्रीप्रकाश बेताला जी, डॉ. संगम मिश्र जी। (३) श्री अरुण जेतली जी दीप प्रज्वलित करते हुए। (४) आनन्द मिश्र 'अभय', अरुण जेतली को व (६) आनन्द मिश्र 'अभय', श्री रामकुमार वर्मा जी को माल्यार्पण करते हुए तथा नीचे कार्यक्रम का आनन्द उठाते दूर-दूर से आये हुए श्रोतागण।

श्री शिवकुमार गोयल

वर्ष २०११ का भानुप्रताप शुक्ल स्मृति सम्मान वरिष्ठ पत्रकार श्री शिवकुमार गोयल (पिलखुवा) को प्रदान किया गया; परन्तु अपरिहार्य परिस्थितिवश वे स्वयम् सम्मान ग्रहण करने समारोह में नहीं पधार सके। अतएव यह सम्मान उनके प्रतिनिधि के रूप में उनके निकट सम्बन्धी श्री हरि प्रकाश ने ग्रहण किया। मध्य (नीचे) के चित्र में श्री हरिप्रकाश प्रतिनिधि के रूप में उक्त सम्मान प्राप्त करते हुए।

● अपना 'राष्ट्र साधना' विशेषाङ्क, सार्थक है, सुन्दर है, सामयिक है और है सभी पक्षों से सामग्री बटोर, आज के भारत को सही दिशा देनेवाला, उपयुक्ततम प्रकाश। आपने अपनी खोजी दृष्टि से न जाने कैसे और कहाँ-कहाँ से, वह सब बटोर लिया, जो अंक को सार्थक और समर्थ बना गया। 'राष्ट्र, राष्ट्र-चैतन्य और राष्ट्र नायक' मेरे कभी बिखरे हुए भावों से, जिस सुन्दरता के साथ, आपने निकाला, वह सचमुच औरों की नहीं, आप की ही सामर्थ्य है। और तो सोच भी नहीं सकते।

'अंक' को देख आनन्दित हुआ और विश्वास है कि आनेवाले अंक इससे भी कहीं अधिक सुन्दर और समर्थ होंगे।

— डॉ. ब्रह्मदत्त अवस्थी
फतेहगढ़ (उ.प्र.)

● इस बार का 'राष्ट्रधर्म' का अक्तूबर अंक कुछ विशेष तेवरों वाला लगा। आपके सम्पादकीय में प्राणवत्ता मुखर हुई है, जिसके लिए आपका साक्षात् अभिनन्दन-वन्दन करने का मन कर रहा है। कम से कम मुझे तो ऐसी ही स्पष्टवादिता, ऐसे ही तेवर अच्छे लगते हैं। एतदर्थ मेरी विशेष प्रणति स्वीकारें।

— आचार्य देवेन्द्र कुमार देव
बरेली (उ.प्र.)

● मैं विगत तीन–चार वर्षों से 'राष्ट्रधर्म' का नियमित पाठक हूँ। देशभक्ति से पूर्ण विचारोत्तेजक लेखों के प्रकाशन के लिए मेरी बधाई स्वीकारें। 'राष्ट्र साधना विशेषांक' तो संग्रह के योग्य बन पड़ा है। इसमें प्रकाशित लेखों और कविताओं का तो कहना ही क्या ?

— जनार्दनप्रसाद अष्ठाना 'पथिक'
जौनपुर (उ.प्र.)

● 'राष्ट्रधर्म' पत्रिका अपने नाम को सार्थक करते हुए विगत ४६ वर्षों से हिन्दू, हिन्दी, हिन्दुस्तान तथा हिन्दू राष्ट्र, राष्ट्रीयता व हिन्दुत्व के विविध सारगर्भित पहलुओं पर विद्वानों के अन्वेषणपूर्ण लेखों व विचारों से भारत राष्ट्र की अनवरत साधना में संलग्न रहकर महती राष्ट्र सेवा तथा राष्ट्रीय जागरण का कार्य कर रही है। तदर्थ साधुवाद !

● अभी 'राष्ट्रधर्म' का अक्तूबर २०११ अंक पढ़कर समाप्त ही किया था कि आपने नवम्बर २०११ का अंक 'राष्ट्र साधना विशेषांक' प्रस्तुत कर मन मोह लिया। धन्य हैं आप। धन्य है आपकी कार्यक्षमता, कर्त्तव्यनिष्ठा तथा जीवनमूल्यों के प्रति आप की आस्था एवं राष्ट्र भावना !

'राष्ट्र साधना विशेषांक' की जितनी भी प्रशंसा की जाये, कम है। आप के इस अंक में जैसे भारत की आत्मा बोलती है, मुस्कराती है, स्नेह बाँटती है। इतने महापुरुषों के दर्शन, आपने एक साथ करवा दिये हैं। इतने ऋषि–मुनियों तथा देवतुल्य विभूतियों से सम्पर्क करा जैसे आपने भारतीय संस्कृति का खजाना ही सामने लाकर रख दिया है। भारतीय संस्कृति से ओत–प्रोत संस्थाओं, चाहे वह आर्य समाज है, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ है, विश्व हिन्दू परिषद् है या कोई और, सब में भारतीय गर्व की पराकाष्ठा है। राष्ट्र एक जीता–जागता संकल्प है। जीवन का अटूट बन्धन है। यह साधना की पृष्ठभूमि है, यहाँ उपयोगितावाद, नैतिकतावाद तथा सौन्दर्यवाद के अन्तर्गत भावोद्दीपन है, राज्य–व्यवस्था का विश्लेषण है, बहुज्ञता है तथा जीवनानुभव है, जो पवित्रता, आर्द्रता, कोमलता, भावमग्नता से परिष्कृत तथा परिमार्जित है। कहीं स्वामी विवेकानन्द दिखते हैं, तो कहीं छत्रपति शिवाजी हैं; कहीं महामति चाणक्य हैं, तो कहीं आज का लौहपुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल हैं; कहीं आदर्श हिन्दू बनने का सन्देश देते श्री गुरुजी हैं, तो कहीं डा. केशव बलिराम हेडगेवार हैं। आज के भारत के सपूत भी विद्यमान हैं। भारत की आत्मा हर जगह जाग्रत है। हर क्षण देशवासियों को झकझोरती-सी प्रतीत होती है। वेद हैं, पुराण हैं और आदर्श का विस्तृत क्षेत्र है।

इतने प्रभावी तथा सारगर्भित अंक के लिए आप को लाखों लाख बधाइयाँ। ईश्वर से प्रार्थना है कि उसका आशीर्वाद वाला हाथ हमेशा आप के सिर पर रहे। आप दिन दोगुनी, रात चौगुनी प्रगति करते रहें। शुभकामनाओं के साथ–

— बैकुण्ठ नाथ
अहमदाबाद (गुजरात)

इसी क्रम में 'विषय केन्द्रित' विशेषांक प्रकाशन की इस पत्रिका ने एक अभिनव योजना प्रारम्भ की है, जो पाठकों के ज्ञानवर्द्धन का उत्तम साधन है। नवम्बर, २०११ का 'राष्ट्र साधना विशेषांक' इस शृंखला का महत्त्वपूर्ण अंक पढ़ने को मिला। इस अंक के सभी लेख तथा कविताएँ उद्देश्यपूर्ण तथा सार्थक हैं। विद्वान् लेखक श्री ब्रह्म अवतार 'धर्म विशारद' का 'राष्ट्र साधना का बीज मन्त्र है 'हिंदू' लेख ने अत्यन्त प्रेरक तथा आँग्ल भाषा पठित भारतीय इतिहासकारों के 'हिन्दू' शब्द के उद्भव का स्रोत अरबी भाषाभाषियों द्वारा भारतवासियों को सम्बोधन दिये जाने का अन्वेषणपूर्ण प्रमाणों से खण्डित करने का महान् कार्य किया है। विडम्बना ही है कि हिन्दी सहित सभी भाषाओं के शब्दकोशों तक में वही भ्रामक व्याख्या व अर्थ दिया गया है।

विद्वान् लेखक ने प्रमाण सहित सिद्ध किया है कि 'हिन्दू' शब्द भारतीय मूल का है तथा संस्कृत भाषा का है। स्वयं फारसी भाषा व लिपि से तथा सन् ५७० ई. में इस्लाम के प्रवर्त्तक के जन्म के पहले से यह शब्द रहा है। फारसी भाषा व लिपि का प्रारम्भ ही सन् ८०० ईस्वी का है।

'हिंदू' शब्द एक आध्यात्मिक 'बीज मन्त्र' है, जो ईश्वरीय शक्ति व सत्ता का प्रतीक हैं, यह सिद्ध करके आपने ऐतिहासिक कार्य किया है।

यह विचार, मान्यता तथा इसके प्रमाण भारत के वर्त्तमान इतिहासकारों के लिए मननीय है। अतः इतिहास के पुनर्विचार व संशोधन के लिए उनकी गोष्ठियाँ व सम्मेलनों का आयोजन करने से बहुत बड़ी राष्ट्र साधना होगी।

— त्रिलोकी नाथ सिनहा
वाराणसी (उ.प्र.)

श्री रविचन्द्र गुप्ता सम्मानित

वृन्दावन। परम शक्तिपीठ की अधिष्ठात्री दीदी माँ साध्वी ऋतम्भरा जी ने वात्सल्य ग्राम वृन्दावन में अपने जन्म दिवस के अवसर पर भानुप्रताप शुक्ल स्मृति शहीद संग्रहालय की स्थापना में अनुपम योगदान के लिए शहीद स्मृति चेतना समिति (पंजी) दिल्ली के संस्थापक श्री रविचन्द्र गुप्ता जी को वात्सल्य सम्मान से सम्मानित किया। इस अवसर पर अपने उद्‌बोधन में ऋतम्भरा जी ने रविचन्द्र गुप्ता जी को एक अनूठा देशभक्त, अनाम क्रान्तिवीरों को अपने रक्त से चित्रित करनेवाला, अपनी कलम से उन्हें अमरता प्रदान करनेवाला साहित्यकार बताया, जीवन के झञ्झावातों की परवाह किये विना देशभक्ति की ज्योति को जगाये रखनेवाले राष्ट्र के सच्चे सिपाही को सम्मानित करते हुए परम शक्तिपीठ अपने को गौरवान्वित महसूस कर रहा है।

इस अवसर पर वात्सल्यग्राम के संविद् गोकुलम् विद्यालय के छात्र-छात्राओं द्वारा देशभक्ति की भावनाओं से ओतप्रोत अनेक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। यह कार्यक्रम संविद् गोकुलम् विद्यालय की कुशल शिक्षक-शिक्षिकाओं द्वारा तैयार किये गये।

भाजपा की वरिष्ठ नेता पूर्व मुख्यमन्त्री (मध्यप्रदेश) सुश्री उमा भारती ने दीदी माँ को अपनी गुरु बताते हुए उन्हें जन्मदिन की शुभकामनाएँ दीं। इस सम्पूर्ण आयोजन का श्रेय भाजपा विधायक जयभगवान अग्रवाल को जाता है, जिन्हें दीदी माँ अपना हनुमान कहती हैं। कार्यक्रम का सञ्चालन श्री उमाशंकर ने किया। सेठ रामनिवास गुप्ता (अध्यक्ष) ने समिति के द्वारा तैयार सी.डी. का विमोचन दीदी माँ के करकमलों द्वारा कराया। इस अवसर पर समिति के सांस्कृतिक मन्त्री पुष्पेन्द्र गोयल, रामकुमार सुप्रसिद्ध चित्रकार, अवधेश गुप्ता, मुकेश कुमार, नवरतन गर्ग, पूरणचन्द्र खत्री, महेश चन्द्र शर्मा, ऋषिपाल शर्मा, योगेश कुमार सिंह, श्रीमती सारिका गर्ग, जगदीश लाल, श्रीमती शोभा रानी, प्रमिल शर्मा, श्रीमती सत्यवती शुक्ला, श्रीमती विमला गर्ग, श्रीमती शर्मा आदि उपस्थित रहे।

कीर्तिशेष

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद अग्रवाल– राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड के निदेशक मण्डल के सदस्य, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में रसायन-शास्त्र विभाग के अध्यक्ष रहे डॉ. राजेन्द्र प्रसाद अग्रवाल का गत १८ जनवरी को इलाहाबाद स्थित उनके आवास पर दीर्घ रुग्णता के पश्चात् स्वर्गवास हो जाने से समाज सेवा के क्षेत्र में एक रिक्ति का अनुभव किया जायेगा।

'राष्ट्रधर्म' परिवार की ओर से उनकी पुण्य-स्मृति को शतशः नमन।

डॉ. अम्बाशंकर नागर– ६ अगस्त, १९२५ को जयपुर में जन्मे, मूलतः गुजराती भाषी डॉ. अम्बाशंकर नागर का गत १२ जनवरी को अहमदाबाद स्थित उनके आवास पर स्वर्गवास हो गया। गुजरात में हिन्दी प्रचार, वहाँ के हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों की खोज और गाँव-गाँव में हिन्दी प्रचार आदि में उनका विशेष योगदान रहा। साहित्य की सभी विधाओं में पुष्कल परिमाण में रचना की। अनेक संस्थाओं के पदाधिकारी रहे तथा अनेक प्रदेशों द्वारा विभिन्न पुरस्कारों से अलंकृत नागर जी को २००६ में 'राष्ट्रधर्म हिन्दी सेवा सम्मान' से सम्मानित किया गया था।

'राष्ट्रधर्म' परियार की ओर से उनकी पुण्य स्मृति को शतशः नमन।

● मेरा आपको हार्दिक अभिनन्दन है। 'राष्ट्रधर्म' का 'राष्ट्र साधना विशेषांक' मिला, प्रसन्नता हुई। यह पत्रिका मुझे बहुत प्रिय है, फिर भी अभी तक मैं इसका ग्राहक नहीं हूँ। आर.एस.एस. को मैं कम ही पसन्द हूँ, यही कारण हो सकता है। बहुत पहले का लिखा मेरा एक निबन्ध आप ने छाप दिया, यह प्रसन्नता की बात है। इसमें प्रथम पृष्ठ के दाहिने भाग की ५वीं पंक्ति में 'ज्वालायें बिखेरने' छपना था, कुछ बिगड़ गया है। आपने मेरे 'राष्ट्रिय' के स्थान पर राष्ट्रीय छापकर सुधार करने का घातक कष्ट उठाया है, यह मेरे लिए क्षोभ का विषय है। मेरा पाठ व्याकरण से शुद्ध है, आपका नहीं। आप पिछले ४८ वर्षों से यह गलती करते आये हैं, मुझे भी उसी धारा में घसीटना चाहा है, यह ठीक नहीं। अस्तु, आप चाहें तो आगे भी पत्रिका मुझे भेज सकते हैं और मेरे ठोस राष्ट्रिय निबन्ध छाप सकते हैं। आपको अपेक्षा होने पर लिखूँगा। मेरा दिया शीर्षक सामयिकता के लिए बदला है, सो ठीक है। शोधपूर्ण मेरा निबन्ध 'राष्ट्रिय चिन्तन और प्रशिक्षण' आपके कार्यालय में रहना चाहिए, भेज रहा हूँ। इस पर आप अपनी टिप्पणी भेज सकते हैं। इसे राष्ट्र के सर्वोच्च हित से कैसे जोड़ा जा सकता है, यह भी आप सोच सकते हैं।

मुखपृष्ठ पर महान् राष्ट्रसेवियों के चित्र छपे हैं, यदि राष्ट्र के प्रति समर्पण भाव के प्रतीक हैं, तो राष्ट्रियता में अधूरापन के भी सूचक हैं। समग्र राष्ट्रियता का धनी कलिकाल में अभी तक कोई महापुरुष नहीं हुआ। यदि कोई एक हो भी जाये, तो उस केवल एक से राष्ट्रहित सम्भव नहीं। पूरे देश में राष्ट्रियता का भाव भरना चाहिए। चीन के माओ ने ऐसा करके दिखलाया था। रूस में भी ऐसा कुछ हुआ था। दोनों में राष्ट्रियता अधूरी थी। इससे दोनों जगह अवाञ्छित परिवर्त्तन हो गये। ठोस प्रशिक्षण के द्वारा नवयुवकों में समग्र राष्ट्रियता उतारने की आवश्यकता है। वह प्रशिक्षण मेरे निबन्ध में स्पष्ट रूप से प्रस्तुत है। कोई राष्ट्रसेवी उसका मनन करके क्रियान्वयन की प्रक्रिया बना सकता है। शेष पुनः।

— विष्वक्सेनाचार्य
मथुरा (उ.प्र.)

चुटकियाँ

उत्तर प्रदेश का बँटवारा

उत्तर प्रदेश का
चार राज्यों में बँटवारा,
एक राज्य में चरती-खाती
एक भैंस चारा,
उसी क्षेत्रफल के चरागाह में
जब होंगी चार भैंसें–
मुख्यमन्त्री-प्रधानमन्त्री बतायें
कैसे पूरा पड़ेगा चारा ?

(२)

बँटा उत्तर प्रदेश तो
मुख्यमन्त्री भी चार होंगे
चार विधानसभाएँ होंगी
चार-चार स्पीकर होंगे,
चार-चार राज्यपाल भी,
विकास नहीं, विनाश होगा
जनता मरेगी भूखों–
खर्चा बढ़ेगा चार गुना
संसाधन कैसे बढ़ेंगे ?

(३)

बँटवारा से कोई लाभ
जनता को तो नहीं मिलेगा
पर इससे तो निःसन्देह
नेताओं को लाभ मिलेगा
१९४७ में देश बँटा तो
कितना लाभ मिला जनता को
तब भी लाभ मिला नेता को
आगे भी उन्हें मिलेगा।

— विक्रमादित्य सिंह चौहान
(रायबरेली)

खेल

नहीं किसी को फाँसी होती
न ही किसी को जेल
कांग्रेस का शासन भइया
खेलो खुलकर खेल।

— प्रभाष मिश्र 'प्रियभाष' (कन्नौज)

नेतापुत्र

नेताजी का बेटा
लाडला है बड़ा
जैसे करेला नीम चढ़ा।

— महेन्द्र श्रीवास्तव (उज्जैन)

महँगाई

वे कहते हैं जनता (गरीब)
ज्यादा खाती है
इसलिए महँगाई
दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती है।

— कुँ. बी.एस. विद्रोही (ग्वालियर)

माया और पत्थर

सोते-सोते रात में
ऐसा हुआ बवण्डर
कोई भी कुछ समझ न पाया
माया बन गयी पत्थर।

— धर्मेन्द्र त्रिपाठी (लखनऊ)

जेब गणित

बड़ी जेब की, जीत
छोटी जेब की, हार
जेब की सरकार
जेब में सरकार
लोकतन्त्र की जय-जयकार।

— सूर्यनारायण गुप्त 'सूर्य'
(देवरिया)

परिभाषा

अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता
मौलिक अधिकारों की
संवैधानिक भाषा है
किन्तु हमारे विरुद्ध
की गयी टिप्पणी
मानहानि के अपराध की
परिभाषा है।

— सतीशचन्द्र शर्मा 'सुधांशु'
(शाहजहाँपुर)

यह काम

बदमाश, काले झण्डे दिखाता है !
मन करता है, मारूँ दो लात
बॉस ! आप बैठे रहिए
यह काम तो हम कारिन्दों का है।

— डॉ. रमेशचन्द्र नागपाल
(गाजियाबाद)

और अब...

पहले, जब बच्चा रोता था
तो उसे झुनझुना थमाते थे
और अब
जब बच्चा रोता है
तो उसे मोबाइल दिखाते हैं।

मेहरबानी

भगवान् ने किया हैरान
सबको छोड़
मन्त्री जी पर हो गये मेहरबान।

— अनूप कुमार शुक्ल (सीतापुर)

इस स्तम्भ हेतु ऐसी ही छोटी और चुटीली रचनाओं का स्वागत है।

(पृष्ठ १० का शेष) **ऐसे हुआ 'गजेन्द्र-मोक्ष'**

ऊपर उठती है। सुमन के मन से उभरी सुरभि सी प्रभावकारी होती है। हरि का हृदय भी सदय हुआ। अन्तर माखन-सा द्रवित हुआ। वे विद्युत् वेग से आये। फिर गज की मुक्ति में क्यों विलम्ब होता ?

'गजेन्द्र-मोक्ष' की इस गाथा ने छत्रसाल के अन्तर में आशा की जोत जगायी। सोचा, संकट में सहायता लेना निन्द्य नहीं। कोई चारा भी न था। विरोधी के पास दिल्ली से मनचाहा पैसा आ रहा था। नयी भर्ती निरन्तर हो रही थी। अस्त्र भी भरपूर। सेना के पहरे में रसद सतत आ रही थी। महाराज वृद्ध, अवस्था से जर्जर। मात्र मनोबल था, भूमि को स्वतन्त्र कराने की डोर से बँधा। कहीं सम्बन्ध नहीं। प्रबन्ध नहीं। अनुबन्ध कहाँ ? हरि ने गज के संकट काटे। मेरी भी सुनेंगे ? सहसा महाराज के हृदय में हर्ष की हिलोर हहरायी। उन्होंने निश्चय किया, मैं समानधर्मा, वीर बाजीराव को सन्देश भेजूँगा। वे सुनेंगे, तो आयेंगे भी। महाराज ने अश्वारोही के हाथ यह दोहा लिखकर भेजा–

'जो गति ग्राह गजेन्द्र की सो गति मेरी आज।
बाजी जात बुँदेल की, राखो बाजी लाज।।'

दोहा पढ़कर द्रवित बाजीराव तत्क्षण चल पड़े। दूरी के कारण २२ दिन लग गये। बंगश को धोखा देने के लिए मराठे एकदम सामने न आये। बंगश परास्त हुआ। वह जैतपुर के किले में छिप गया। पहले भी युद्ध साल भर चला था। एक बार भी छह मास घेरा पड़ा रहा। संग्राम समाप्त न हुआ था। बंगश कच्छप-सा सिकुड़ कर बैठ गया था। निकले नहीं, तो संगर की समाप्ति कैसे हो ? रण-रसिक बाजीराव ने एक युक्ति सोची। उन्होंने दुर्ग में रसद पहुँचने पर कड़ी रोक लगायी। अनाज के अभाव में सैनिक भेड़, बकरी आदि पशुओं को खाते रहे। जब वह भी चुकने लगा, तो दुर्ग का द्वार खोल निकल भागे। इस प्रकार धर्म-गाथा ने, साहित्य ने राष्ट्र-धर्म में योग दिया। ☐

— विट्ठलनगर, खण्डवा— ४५०००१ (म.प्र.)

– नरेन्द्र कोहली

राजनीति

भोलाराम बहुत उद्विग्न था।

"क्या हुआ भोलाराम ?" रामलुभाया ने पूछा।

"इस देश को क्या हो गया है।"

"क्या हो गया है ? वैसा ही तो है, जैसा सदा से रहा है। शान्त और सोया हुआ।" रामलुभाया ने कहा, "हमारे प्रधानमन्त्री ने आज भी कहा है कि उनका लक्ष्य देश का उत्थान नहीं, अल्पसंख्यकों का उत्थान है।"

"तो उसमें बुराई क्या है ?"

"नहीं। बुराई तो कोई नहीं है। जब तक वे पचासी प्रतिशत देशवासियों को पिछड़ा हुआ नहीं बना लेंगे, उनको चैन नहीं आयेगा। जिस देश की सरकार का लक्ष्य १५ प्रतिशत का हित हो, जो उनको देश के वक्ष पर बैठा देना चाहती हो, वह देश की प्रतिनिधि सरकार कैसे हो सकती है ? वह सरकार देश में जनतन्त्र कहाँ से लायेगी ?"

"नहीं, मेरा ध्यान उस ओर नहीं है।" भोलाराम बोला।

"यही तो खेद का विषय है कि तुम्हारा ध्यान उस ओर नहीं है।" रामलुभाया ने कहा, "८५ प्रतिशत के पास कोई अधिकार न हो। उनकी आँखों के सामने उनके देश को केक के टुकड़े बनाकर या उसकी बोटियाँ काटकर, दूसरों को बाँट दिया जाये और वे कुछ कर न सकें। तुम्हारा ध्यान इस ओर क्यों नहीं है भोलाराम ?"

"नहीं; वह बात नहीं है।" भोलाराम तड़ककर बोला, "मैं तो यह सोच रहा था कि कोई किस पर विश्वास करे। सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। पहले सन्त दिखायी देते हैं और फिर असली रूप में आ जाते हैं।"

"सन्त और असली रूप का क्या प्रश्न है ?" रामलुभाया ने कहा, "जिस देश की सरकार ही जोंक बनकर उसका रक्तपान करती जा रही हो, उसका क्या करोगे ! जो देश हित में कुछ न करना चाहे; देश के धन को काला धन बनाकर बाहर भेजती रहे और उन काले-धनपतियों का नाम भी न बताना चाहे, उसका तो असली रूप भी सामने है। फिर भी इस देश में परिवर्त्तन नहीं हो रहा।"

"यह असली रूप नहीं।"

"तो और कौन-सा असली रूप ? असली रूप क्या है ?" रामलुभाया ने कहा, "जानते हो न, मनुष्य का असली रूप 'आत्मा' है। जो कुछ दिखायी पड़ता है, वह उसका वास्तविक रूप है ही नहीं। तो तुम किस असली रूप की बात कर रहे हो ?"

"कहा न पहले सन्तों के रूप में आते हैं और फिर..."

"और फिर क्या ?"

"अब अन्ना को ही देखो, आन्दोलन आरम्भ किया, तो भ्रष्टाचार के विरुद्ध थे और अब कांग्रेस के विरुद्ध हैं। वे राजनीति कर रहे हैं। बाबा रामदेव ने भी यही किया था।"

"तो राजनीति करना पाप है क्या ? सारे राजनीतिक दल क्या कर रहे हैं?"

"राजनीतिक दल ?" भोलाराम ने थोड़ा सोचा, "वे आदान-प्रदान कर रहे हैं, छीन-झपट कर रहे हैं, ठगी कर रहे हैं, चोरी-डकैती कर रहे हैं।..."

"तो तुम उनकी डकैती को उचित मानते हो और अन्ना की राजनीति का विरोध कर रहे हो। ऐसा क्यों ? राजनीति, डकैती से तो बुरी नहीं है।"

भोलाराम की आँखों में अश्रु आ गये, "तुम नहीं जानते हो रामलुभाया! इसका परिणाम क्या होगा ?"

"क्या होगा ?"

"ठगे जायेंगे ये लोग। बुरी तरह ठगे जायेंगे। इन्हें राजनीति आती नहीं है। राजनीतिक गुर जानते नहीं। ये राजनीतिज्ञों का सामना नहीं कर पायेंगे।"

"ऐसा क्यों कह रहे हो ?"

"मैंने देखा है। गान्धी ने राजनीति की। साढ़े चार प्रदेशों के हिन्दुओं के प्राणों और सम्पत्ति का मूल्य चुकाकर, अंग्रेजों से सत्ता प्राप्त कर ली; किन्तु न उसे स्वयं रख पाये, न पटेल को दे पाये। नेहरू से उसे बचा नहीं पाये। जयप्रकाश नारायण ने इतना बड़ा आन्दोलन किया; किन्तु आन्दोलन की मलाई तो लालूप्रसाद खा गये। देश, बिहार अथवा जयप्रकाश को क्या मिला ? अब अन्ना के साथ जाने क्या हो... मेरा मन उनके लिए बहुत रोता है रामलुभाया !"

"रोने से क्या होगा भोलाराम ?"

"कह नहीं सकता; पर सब रो ही तो रहे हैं।" भोलाराम बोला, "कुछ घर में रो रहे हैं, कुछ कार्यालय में, कुछ संसद् में रो रहे हैं, कुछ सड़क पर। कुछ इसलिए रो रहे हैं; क्योंकि वे ठगे गये हैं, कुछ इसलिए रो रहे हैं कि वे उसकी आड़ में देश को ठगना चाहते हैं। मेरी तो समझ में कुछ नहीं आ रहा।"

"तो तुम भी राजनीति करो।" रामलुभाया ने कहा, "तुम्हारे पल्ले भी कुछ न कुछ पड़ ही जायेगा।"

"पर देश को तो उससे भी कुछ नहीं मिलेगा न !" भोलाराम बोला, "कोई न कोई मुझसे भी सब कुछ झपटकर ले जायेगा।"

□

– १७५, वैशाली, पीतमपुरा,
दिल्ली– ११००३४

आर.एन.आई.पंजी.क्रमांक-६७०१/६४ फरवरी-२०१२ लखनऊ आर.एम.एस. नान टी.डी. : २४, २५, २६, २७
पंजी. क्र. एस.एस.पी./एल.डब्ल्यू./एन.पी.-२११/२०१२-१४

स्वत्वाधिकारी राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड, लखनऊ के लिए मुद्रक, प्रकाशक सत्येन्द्र पाल बेदी द्वारा नूतन ऑफसेट मुद्रण केन्द्र, राजेन्द्र नगर, लखनऊ से मुद्रित व संस्कृति भवन राजेन्द्र नगर, लखनऊ से प्रकाशित – सम्पादक : आनन्द मिश्र 'अभय'